वली
क्तूबर

पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू

मिला नहीं गुरुज्ञान तभी तक, देखी रातें काली।
ज्योत से ज्योत जगा सद्गुरु ने, कर दी सदा दिवाली॥

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ११
अंक : ९४
९ अक्तूबर २०००

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क
भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 25
(२) पंचवार्षिक : US $ 100
(३) आजीवन : US $ 250

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org.
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

आत्मज्ञान के प्रकाश से अँधेरी अविद्या को मिटाओ

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

मिथ्या प्रपंच देख दुःख जिन आन जीय ।
देवन को देव तू तो सब सुखराशि है ॥
अपने अज्ञान ते जगत सारो तू ही रचा ।
सबको संहार कर आप अविनाशी है ॥

यह संसार मिथ्या व भ्रममात्र है लेकिन अविद्या के कारण सत्य भासता है । नश्वर शरीर में अहंबुद्धि तथा परिवर्तनशील परिस्थितियों में सत्यबुद्धि हो गयी है इसीलिये दुःख एवं क्लेश होता है । वास्तव में देखा जाये तो परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं लेकिन परिस्थितियों का जो आधार है, अधिष्ठान है वह नहीं बदलता ।

'बचपन बदल गया । किशोरावस्था बदल गयी । जवानी बदल गयी । अब बुढ़ापे ने घेर रखा है... लेकिन यह भी एक दिन बदल जायेगा । इन सबके बदलने पर भी जो नहीं बदलता, वह अबदल चेतन आत्मा 'मैं' हूँ और जो बदलता है वह माया है...' सदाचार व आदर के साथ ऐसा चिंतन करने से बुद्धि स्वच्छ होती है और बुद्धि के स्वच्छ होने से ज्ञान का प्रकाश चमकने लगता है ।

जिनके भाल के भाग्य बड़े, अस दीपक ता उर लसके ।

'यह ज्ञान का दीपक उन्हीं के उर-आँगन में जगमगाता है, जिनके भाल के भाग्य-सौभाग्य ऊँचे होते हैं ।' उन्हीं भाग्यशालियों के हृदय में ज्ञान की प्यास होती है और सद्गुरु के दिव्य ज्ञान व पावन संस्कारों का दीपक जगमगाता है । पातकी स्वभाव के लोग सद्गुरु के सान्निध्य की महिमा क्या जानें ? पापी आदमी ब्रह्मविद्या की महिमा क्या जाने ? संसार को सत्य मानकर अविद्या का ग्रास बना हुआ, देह के अभिमान में डूबा हुआ यह जीव आत्मज्ञान की महिमा बतानेवाले संतों की महिमा क्या जाने ?

पहले के जमाने में ऐसे आत्मज्ञान में रमण करनेवाले महापुरुषों की खोज में राजा-महाराजा अपना राज-पाट तक छोड़कर निकल जाते थे और जब ऐसे महापुरुष को पाते थे तब उन्हें सदा के लिये अपने हृदय-सिंहासन पर स्थापित करके उनके द्वार पर ही पड़े रहते थे । गुरुद्वार पर रहकर सेवा करते, झाड़ू-बुहारी लगाते, भिक्षा माँगकर लाते और गुरुदेव को अर्पण करते । गुरु उसमें से प्रसाद के रूप में जो उन्हें देते, उसीको वे ग्रहण करके रहते थे । थोड़ा-बहुत समय बचता तो गुरु कभी-कभार आत्मविद्या के दो वचन सुना देते । इस प्रकार वर्षों की सेवा-साधना से उनकी अविद्या शनैः-शनैः मिटती और उनके अंतर में आत्मविद्या का प्रकाश जगमगाने लगता ।

आत्मविद्या सब विद्याओं में सर्वोपरि विद्या है । अन्य विद्याओं में अष्टसिद्धियाँ एवं नवनिधियाँ बड़ी ऊँची चीजें हैं । पूरी पृथ्वी के एकछत्र सम्राट से भी अष्टसिद्धि-नवनिधि का स्वामी बड़ा होता है लेकिन वह भी आत्मविद्या पाने के लिये ब्रह्मज्ञानी महापुरुष की शरण में रहता है ।

आप ऐसी पत्रिका पढ़ रहे हैं...

आपको यह जानकर अत्यंत आनंद होगा कि जनवरी २००० में १० लाख सदस्यों तक पहुँचनेवाली आपकी लोकप्रिय आध्यात्मिक पत्रिका 'ऋषि प्रसाद' ने केवल आठ महीने के अल्पकाल में ही इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है कि अगस्त २००० तक इसकी प्रकाशन संख्या १४ लाख को पार कर चुकी है । सेवाधारियों एवं सदस्यों के अतिरिक्त पाठकों के लिये भी यह अत्यंत गौरव का विषय है ।

इस प्रसाद का सेवन करके आप तो धन्य हो ही रहे हैं, औरों तक भी इसको पहुँचाने का पुण्यलाभ अर्जित कर सकते हैं । सचमुच में वे बड़े भाग्यशाली हैं जो इस प्रसाद को जन-जन तक पहुँचाकर पूज्यश्री के दिव्य दैवी कार्य में सहभागी हो रहे हैं...

हनुमानजी के पास अष्टसिद्धियाँ एवं नवनिधियाँ थीं फिर भी आत्मविद्या पाने के लिये वे श्रीरामजी की सेवा में तत्परता से जुटे रहे और अंत में भगवान श्रीराम द्वारा आत्मविद्या पाने में सफल भी हुए। इससे बड़ा दृष्टांत और क्या हो सकता है ? हनुमानजी बुद्धिमानों में अग्रगण्य थे, संयमियों में शिरोमणि थे, विचारवानों में सुप्रसिद्ध थे, व्यक्तियों को परखने में बड़े कुशल थे, छोटे-बड़े बन जाना, आकाश में उड़ना आदि सिद्धियाँ उनके पास थीं, फिर भी आत्म-साक्षात्कार के लिये उन्होंने श्रीरामजी की जी-जान से सेवा की। हनुमानजी कहते हैं :

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम...

हनुमानजी की सारी सेवाएँ तब सफल हो गयीं जब श्रीरामजी का हृदय छलका और उन्होंने ब्रह्मविद्या देकर हनुमानजी की अविद्या को सदा-सदा के लिये दूर कर दिया।

मानव संसार को सत्य मानकर उसीमें उलझा हुआ है और अपना कीमती जीवन बरबाद कर रहा है। जो वास्तव में सत्य है उसकी उसे खबर नहीं है और जो मिथ्या है उसीको सत्य मानकर, उसीमें आसक्ति रखकर फँस गया है।

जो विद्यमान न हो किन्तु विद्यमान की नाईं भासित हो, उसको अविद्या कहते हैं। इस अविद्या से ही अस्मिता, राग-द्वेष एवं अभिनिवेश पैदा होते हैं। अविद्या ही सब दुःखों की जननी है।

अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश- इनको 'पंच क्लेश' भी कहते हैं। पंच क्लेश आने से षड्विकार भी आ जाते हैं। उत्पत्ति (जन्मना), स्थिति (दिखना), वृद्धि (बढ़ना), रुग्णता (बीमार होना), क्षय (वृद्ध होना) और नष्ट होना- ये षड्विकार अविद्या के कारण ही अपने में भासते हैं। इन षड्विकारों के आते ही अनेक कष्ट भी आ जाते हैं और उन कष्टों को झेलने में ही जीवन पूरा हो जाता है। फिर जन्म होता है एवं वही क्रम शुरू हो जाता है। इस प्रकार एक नहीं, अनेकों जन्मों से जीव इसी शृंखला में, जन्म-मरण के दुष्चक्र में फँसा है।

गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक गंगा नदी में जितने रेत के कण होंगे उसे कोई भले ही गिन ले लेकिन इस अविद्या के कारण यह जीव कितने जन्म भोगकर आया है, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

इस जन्म-मरण के दुःखों से सदा के लिये छूटने का एकमात्र उपाय यही है कि अविद्या को आत्मविद्या से हटानेवाले सत्पुरुषों के अनुभव को अपना अनुभव बनाने के लिए लग जाना चाहिए। जैसे, भूख को भोजन से तथा प्यास को पानी से मिटाया जाता है, ऐसे ही अज्ञान को, अँधेरी अविद्या को आत्मज्ञान के प्रकाश से मिटाया जा सकता है।

ब्रह्मविद्या के द्वारा अविद्या को हटानेमात्र से आप ईश्वर में लीन हो जाओगे। फिर हवाएँ आपके पक्ष में बहेंगी, ग्रह और नक्षत्रों का झुकाव आपकी ओर होगा, पवित्र लोकमानस आपकी प्रशंसा करेगा एवं आपके दैवी कार्य में मददगार होगा। बस, आप केवल उस अविद्या को मिटाकर आत्मविद्या में जाग जाओ। फिर लोग आपके दैवी कार्य में भागीदार होकर अपना भाग्य सँवार लेंगे, आपका यशोगान करके अपना चित्त पावन कर लेंगे। अगर अविद्या हटाकर उस परब्रह्म परमात्मा में दो क्षण के लिये भी बैठोगे तो बड़ी-से-बड़ी आपदा टल जायेगी।

जो परमात्मदेव का अनुभव नहीं करने देती उसीका नाम अविद्या है। ज्यों-ज्यों आप बुराइयों को त्यागकर उन्हें दुबारा न करने का हृदयपूर्वक संकल्प करके ब्रह्मविद्या का आश्रय लेते हैं, ईश्वर के रास्ते पर चलते हैं त्यों-त्यों आपके ऊपर आनेवाली मुसीबतें ऐसे टल जाती हैं जैसे कि सूर्य को देखकर रात्रि भाग जाती है।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! जिनको संसार में रहकर ही ईश्वर की प्राप्ति करनी हो, उन्हें चाहिए कि वे अपने समय के तीन भाग कर दें : आठ घंटे खाने-पीने, सोने, नहाने-धोने आदि में लगायें, आठ घंटे आजीविका के लिये लगायें एवं बाकी के आठ घंटे साधना में लगायें... सत्संग, सत्शास्त्र-विचार, संतों की संगति एवं सेवा में लगायें। जब शनैः शनैः अविद्या मिटने लगे तब पूरा समय अविद्या मिटाने के अभ्यास में लगा दें।''

इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु के कृपा-प्रसाद को पचाकर तथा आत्मविद्या को पाकर अविद्या के अंधकार से, जगत के मिथ्या प्रपंच से सदा के लिये छूट सकते हैं। *

अहंकार का खेल

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

'वास्तव में सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं। परन्तु अहंकार से मोहित हुआ पुरुष 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा मान लेता है।' (भगवद्गीता : ३.२७)

किसी छोटे किसान के घर लड़कीवाले लड़का देखने आनेवाले थे। किसान ने अपने घर में किसीके दो बैल लाकर बाँध दिये, किसीका घोड़ा लाकर रख दिया और किसी पंचायती धर्मशाला में अपनी गद्दी बिछाकर बैठ गया। आस-पास में हरे-भरे खेत भी थे।

लड़कीवाले आये तो उसने कह दिया कि : ''ये बैल, घोड़ा और मकान मेरे हैं। ये हरे-भरे खेत भी अपने ही हैं।'' लड़कीवालों ने सोचा कि : 'यह तो कोई बड़ा साहूकार है ! चलो, यहाँ मँगनी पक्की कर लो।'

मकान तो पंचायती है, घोड़ा-बैल पड़ोसियों के हैं लेकिन कह दिया कि 'ये मेरे हैं।' ऐसे ही ये इन्द्रियाँ और पाँच भूतों का मकान पंचायती है। इस पंचभौतिक (पंचायती) शरीर को 'मैं' मानकर तथा इन इन्द्रियरूपी घोड़ों को 'मेरा' मानकर मनुष्य इनमें आसक्त होकर कर्म करता है। इसीलिये वह कर्मबंधन में बँध जाता है। कर्म तो होते हैं पंचायती मकान में, कर्म होते हैं मन-इन्द्रियों के द्वारा लेकिन यह जीव अपने को उनका कर्त्ता मान लेता है।

जैसे, आँख देखती है परन्तु जीव कहता है कि 'मैं देखता हूँ।' कान सुनते हैं तो बोलता है कि 'मैं सुन रहा हूँ।' मन सोचता है तो कहता है कि 'मैं सोचता हूँ।' बुद्धि निर्णय करती है तो बोलता है कि 'यह मेरा निर्णय है।' इन्द्रियों के साथ मन को जोड़ता है और मन के साथ बुद्धि को जोड़कर उनके साथ स्वयं भी घुल-मिल जाता है। इस बात का उसे पता ही नहीं होता कि उसकी आत्मा शुद्ध-बुद्ध, चैतन्यस्वरूप, अकर्त्ता एवं अभोक्ता है। अहंकार के कारण मूढ़ हुआ यह जीव कर्म के फंदे में फँस जाता है। जिसकी सत्ता से कर्म हो रहे हैं उस परमेश्वर को वह नहीं जानता है और न ही उस प्रकृति को जानता है जिसमें कर्म हो रहे हैं, जो कर्म करती है। अविद्या के कारण यह जीव बीच में अपनी टाँग अड़ा देता है।

जैसे, विद्युत की सत्ता से बिजली के सारे उपकरण चलते हैं। लग तो रहा है कि बल्ब प्रकाश दे रहा है, ट्यूबलाइट रोशनी दे रही है लेकिन ट्यूबलाइट की अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। आवाज को 'स्पीकर' तक पहुँचाने की 'माइक' की अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। ये सारे कार्य तार में बह रही विद्युत की सत्ता से हो रहे हैं। ऐसे ही शरीर, मन अथवा बुद्धि में अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं है प्रत्युत जिसकी सत्ता लेकर यह जड़ माया सत्य जैसी दिख रही है, उस परमेश्वर की सत्ता है। वह परमेश्वर जीव का सनातन सखा है। जीव उस सनातनस्वरूप का ही अंश है। परन्तु यह जीव प्रकृति के कर्मों को अपने ऊपर थोप लेता है। प्रकृति को जहाँ से सत्ता मिलती है उस परमेश्वर की ओर यह जीव नहीं देखता है।

करन करावनहार स्वामी, सकल घटां के अन्तर्यामी।

ऐसा कौन बैठा है जो शरीर में रक्त बना रहा है ? इतनी तेजी से रक्त का संचार होता है कि यदि शरीर के किसी भाग में इन्जेक्शन लगायें तो उसमें भरी औषधि पूरे शरीर में फैल जाती है। न चाहने पर भी बालों को सफेद कौन कर रहा है ? आप नहीं चाहते कि बाल सफेद हो जायँ, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जायँ लेकिन पड़ जाती हैं। ...तो आपके कहने में जो नहीं चलता वह आप नहीं हैं। वह कुछ और ही वस्तु है, फिर भी उसे अपने पर थोप लेते हैं।

यह अहंकार न जाने कैसे-कैसे वेश बदलता है ? यह जरूरी नहीं कि साधु हो जाओ तो अहंकार आपको छोड़ देगा। ना ना। अरे ! जो जेल जाते हैं उनको भी अहंकार छोड़ता नहीं है। पुराना कैदी नये कैदी से पूछता है : ''क्यों रे ! कितनी सजा है ?'' जवाब मिलता है : ''छः महीने की।'' पुराना कैदी कहता है : ''अपना बिस्तर बाहर बरामदे में लगा। तुझे पता नहीं यहाँ तीस सालवाले

मर्द रहते हैं ? तू तो कल का बच्चा है। कोई छोटी-मोटी हरकत की होगी। सिर्फ छः महीने की सजा ! तू अभी नवसिखुआ लगता है। पहली बार आया है क्या ?''

नये कैदी ने 'हाँ' के जवाब में सिर हिलाया।

पुराना कैदी बोला : ''मैं तो चौथी बार आया हूँ।''

जेल जाने का भी अहंकार होता है।

आप अकेले में बैठकर पूजा कर रहे हो तो घंटी अपने ढंग की बजेगी लेकिन यदि घर में दो-चार भक्त आ गये तो घंटी बजाने में अहंकार भी कुछ खेल खेलेगा। आरती बोलने में भी लम्बा विस्तार करने लगेगा। और तो क्या कहें ? बैलगाड़ी हाँकनेवाले लड़के जब खेतों के बीच में से आयेंगे तो अपनी चाल में होंगे किन्तु जब गाँव में प्रवेश करेंगे तब बैलों की पूँछ मरोड़ेंगे, उनको दौड़ायेंगे। साइकिल और रिक्शावाले भी जब अपने मुहल्ले में जायेंगे तो आगे कोई नहीं होगा फिर भी 'हॉर्न' बजायेंगे। यह अहंकार कैसे-कैसे खेल खेलता है ! भगवान की कृपा हो और सावधानी बरती जाय तभी इससे बचा जा सकता है, नहीं तो यह सबको निगल जाता है।

दोपहर का समय था। बुद्धू हलवाई दुकान पर बैठा था। ऊपर कुछ कागजात पड़े हुए थे। चूहों और बिल्ली की भाग-दौड़ में कागजों का बंडल गिरा। उनमें से छमाही परीक्षा का परिणाम हाथ में आया। बुद्धू हलवाई देखता है : इतिहास में पाँच अंक और गणित में सिर्फ तीन अंक ! प्रत्येक विषय में इतने कम अंक देखकर उसे बड़ा गुस्सा आया। वह आगबबूला हो गया। इतने में ही उसका लड़का पाठशाला से आया। बुद्धू हलवाई ने उसका कान पकड़कर कहा : ''रोज दो-पाँच रूपये लेता है और परीक्षा का परिणाम ! देख, तीन अंक, पाँच अंक !''

लड़के ने कहा : ''पापा ! यह 'मार्कशीट' तो बहुत पुरानी है। आगे देखिये, उस पर आपका नाम लिखा है। मेरी 'मार्कशीट' तो मेरे पास है।''

बुद्धू हलवाई का गुस्सा न जाने कहाँ चला गया। हमें अपनी गलती दिखती नहीं है और यदि दिखती है तो बहुत छोटी हो जाती है परन्तु यदि दूसरे की है तो बड़ी दिखती है। यह अहंकार की पहचान है। परिवार में देवरानी-जेठानी आपस में क्यों लड़ती हैं ? अपने अधिकार की रक्षा और दूसरे का कर्त्तव्य, इसीसे झगड़ा होता है। 'तेरा यह कर्त्तव्य है... मेरा यह अधिकार है।' यदि हम अपना कर्त्तव्य देखें और सामनेवाले के अधिकार की रक्षा करें तो कुटुम्ब, समाज और देश स्वर्ग में बदल जायेगा। हम लोग क्या करते हैं ? अपने अधिकार की रक्षा करते हैं और सामनेवाले को उसका कर्त्तव्य बताते हैं : 'साधु-संत की सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। वक्ता आ जाय तो अपना तन, मन, धन अर्पण कर देना तुम्हारा कर्त्तव्य है।'

मैं आपको आपके कर्त्तव्य और मेरा अधिकार बताऊँ तो मेरे अंदर का रस प्रगट नहीं होगा और आपके अंतःकरण में रसस्वरूप की कोई अनुभूति नहीं होगी। यदि मैं अपने कर्त्तव्य की रक्षा करूँ... आप चार कदम चलकर भगवान के नाते, संत के नाते यहाँ आये हो तो यह देखना मेरा कर्त्तव्य है कि आपके पाप मिट जायँ, आपकी अशांति मिट जाय और जीवन की शाम होने से पहले जीवनदाता का दर्शन करने की तड़प आपमें पैदा हो जाय, आपकी अविद्या मिट जाय। अगर मैं अपना ऐसा कर्त्तव्य समझता हूँ और अपने अधिकार के प्रति लापरवाह रहता हूँ तो मेरा अधिकार अपने आप मेरे पीछे-पीछे खिंचकर आयेगा और मेरी सेवा करेगा। मेरा कर्त्तव्य पालने का मुझे आनंद भी आयेगा। जीवन जीने का यही सही तरीका है।

किसान ने अनजान कन्यापक्षवालों को धोखा देने के लिए भले ही झूठ बोल दिया कि : 'ये बैल, घोड़ा, मकान आदि मेरे हैं...' लेकिन जिसने पंचायती मकान बनाया है वह तो जानता है कि यह किसका है। ऐसे ही हम कह रहे हैं कि : 'यह मैं हूँ और यह मेरा है...' लेकिन जिस प्रकृति और परमात्मा ने यह सब बनाया है वे तो जानते हैं कि किसका है। फिर उसको 'मैं' और 'मेरा' मानना यह नादानी है।

शास्त्रों में आता है : 'जिसकी वाणी और मन दोनों पवित्र हैं तथा सत्य एवं धर्म के द्वारा सुरक्षित हैं और जो शरीर, मन तथा इन्द्रियों को अपना नहीं मानता है, उसको वेदान्त का फल अपने आप मिल जाता है।'

जो ईमानदारी एवं तत्परता से कार्य करता है लेकिन अपने में कर्त्तापने को आरोपित नहीं करता वह कर्मयोगी है।

एक बाबाजी ने सत्संगियों के बीच किसी सेठ की प्रशंसा करते हुए कहा कि : ''ये तो बड़े दानवीर हैं, बहुत अच्छे हैं...' किन्तु सेठजी को बड़ा लज्जित हुआ देखकर उन्होंने पूछा : ''भाई ! तुम लज्जित क्यों हो गये ?'' सेठ बोला : ''महाराज ! आपने लोगों को बताया कि 'ये बड़े

दानी हैं, सत्संगियों की सेवा करते हैं...' आदि । ...लेकिन बाबाजी ! मैं तो कुछ भी नहीं करता हूँ । सूर्य और चन्द्रमा दिन-रात रोशनी दे रहे हैं, हवायें चल रही हैं । दिया हुआ सब दाता का है, मेरा तो यह शरीर भी नहीं है ।''

देनेवाला दे रहा, दिन और रैन ।
लोग मुझे दानी कहें, इसलिए नीचे नैन ॥

दान तो करो लेकिन दान का गर्व मत करो । सेवा तो करो किन्तु सेवा का गर्व मत करो । भजन करो किन्तु भजन का गर्व मत करो । मित्र बनाओ लेकिन 'मेरे इतने मित्र हैं... मेरे पास इतना धन है...' ऐसा गर्व न हो । धनबल, जनबल, सत्ताबल ये सारे बल प्रकृति के हैं । आप उनको अपना मानकर उनमें उलझो मत, अपितु ये वस्तुएँ प्रकृति की हैं और आप अमर आत्मा हो, परमात्मा का सनातन सत्य हो, अपने परमात्म-स्वभाव का सुमिरन-मनन-निदिध्यासन करके अपने अलौकिक सुख और ज्ञान को प्रगट कर लो, भैया !

*

संतकृपा तेल

[सर्वगुण तेल]

इस तेल की सुन्दरता की है यह कहानी : ८० साल के एक साधु का पैर एक दुर्घटना में छिल गया । टिहरी सिविल हास्पिटल में पूज्य बापूजी ने उसे टाँके लगवाये, उसका इलाज करवाया । महीने भर मलहम-पट्टी हुई । वह साधु बेचैन स्वर में बोला : ''बापूजी ! सभी प्रकार के घावों पर, चोटों पर जादुई असर कर दे, ऐसा तेल बनाने की विधि मैं जानता हूँ ।'' बस, फिर क्या था ? बनवाया वह तेल । दिन में दो बार घाव पर लगाया । जादुई असर हुआ । वृद्ध साधु ने उस तेल के बहुत गुण बताए । फार्मूला मिला संत से । पहुँचा समिति के पास । बना सर्वगुण संतकृपा तेल । घावों, चोटों, जोड़ों के दर्द, गाँठों पर लगाते ही हुआ चमत्कारिक लाभ । संत श्री आसारामजी औषध निर्माणशाला में यह तेल बनता है । अत्यन्त सस्ता और अत्यन्त लाभकारी ।

यह तेल पूरे बदन पर मालिश करने के लिए नहीं है । जोड़ों के दर्द और घावों पर लगाने से इससे अद्भुत लाभ होता है ।

संतों से कुछ न माँगिये

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है :

'यदि संतों से कुछ भी न माँगिये तो भी वे अमृतरूपी वचनों की वर्षा कर देते हैं । जैसे पुष्पों से बिना माँगे सुगंध प्राप्त होती है ऐसे ही संतजनों से बिना माँगे ही ज्ञान का अमृत प्राप्त हो जाता है ।'

यह जरूरी नहीं कि भगवान एवं संतों से माँगते ही रहें । न माँगें तब भी देना उनका स्वभाव है । फूलों से कुछ नहीं माँगते, फिर भी सुगंध देना उनका स्वभाव है । चाँद से कुछ नहीं माँगते, फिर भी चाँदनी बरसाना उसका स्वभाव है । गंगाजी से कुछ नहीं माँगते फिर भी शीतलता देना उनका स्वभाव है ।

जरूरी नहीं कि माँगें तभी मिले । कुछ लोग कहते हैं : 'मुझे आशीर्वाद दीजिये... मुझे तो थोड़ा-सा आशीर्वाद दीजिये, महाराज ! ...मुझे तो 'स्पेशियल' आशीर्वाद दीजिये ।' आशीर्वाद भी कभी 'स्पेशियल' और 'आर्डिनरी' होता है ? खाने-पीने आदि की

चीजें 'स्पेशियल' और आर्डिनरी होती हैं, आशीर्वाद थोड़े-ही 'स्पेशियल' होता है !

संतों के पास जाकर लोग कहते हैं : 'मुझे यह दीजिये... मुझे वह दीजिये...' ये सब बहुत छोटी बातें हैं, तुच्छ चीजों की माँगें हैं। जैसे, राजा से कोई माँगे कि : 'मुझे बिस्किट दे दीजिये... डबलरोटी दे दीजिये... मुझे एक कप दूध दे दीजिये...' तो राजा को होगा कि : 'कैसा आदमी है ?' वह अपने सेवकों से कहेगा : 'अरे भाई ! इसे दे दो, जो माँग रहा है।'

ऐसे ही ज्ञानी महापुरुषों से भी जगत की नश्वर चीजों की याचना करते हैं। अरे ! आप स्वयं ध्यान-भजन में लग जाओ तो जगत की चीजें दासी की नाईं आपकी सेवा में लग जायेंगी। ध्यान-भजन तो करते नहीं, फिर टोने-टोटके करवाकर, दवाइयाँ खाकर मर रहे हैं। ध्यान का, शक्तिपात शिविर का लाभ तो उठाते नहीं और पड़ जाते हैं टोने-टोटके के चक्कर में।

टूना-फूना टोटका, सभी दीजै धोय ।
गुरु कहे सो कीजिये, आपे ही फल होय ॥

यहाँ जो मंत्र बताते हैं उसे भी काटकर अपना अगर-मगर चलाने लग जाते हैं। गुरु के वचन को भी काट देते हैं फिर भटकते रहते हैं। संतों के वचनों की कीमत नहीं समझते। मूर्खों को संतों का सान्निध्य मुफ्त में मिलता है तो उससे प्राप्त पुण्यों को वे दुनिया के भोग-पदार्थ में ऐसे ही खर्च कर देते हैं फिर दुबारा भिखमंगों की नाईं संसार की वस्तुएँ माँगते रहते हैं। संत हीरे-मोती लेकर बैठे हैं उनका तो कोई ग्राहक नहीं मिलता और लोग सब्जी-भाजी माँगने लगते हैं। जौहरी से, आत्म-खजाने के मालिक से हीरे-मोती लो, सब्जी-भाजी क्यों लेते हो ?

मुख्य कारण है विचार एवं तड़प की कमी... तभी ऐसा होता है। गुरु की, भगवान की कृपा तो ठीक है लेकिन साथ ही अपना विचार एवं तड़प भी चाहिए। अगर स्वयं विचार किये बिना और तड़प के बिना आत्म-साक्षात्कार हो जाये तो अर्जुन के सिर पर अपना हाथ रख देते श्रीकृष्ण। संत-महापुरुष अपने को इतना क्यों खपाते ? गुरु शिष्य के सिर पर हाथ रख देते और कह देते : 'जा बेटा ! आत्म-साक्षात्कारी भव।' ऐसा करके निपटारा कर लेते। नहीं... सिर पर हाथ रखने से आत्म-साक्षात्कार नहीं होता।

आशीर्वाद से संसार की चीजें और छोटी-मोटी परिस्थितियाँ तो मिल सकती हैं, पर ब्रह्मज्ञान तो अपने विचार से ही होगा। माँ कृपा करके भोजन के कौर मुँह में भी रख सकती है लेकिन चबाने के लिये तो अपने को ही मेहनत करनी पड़ेगी। बालक स्वयं नहीं चबायेगा तो पुष्ट कैसे होगा ? ऐसे ही साधक विचार नहीं करेगा तो ज्ञान कैसे होगा ?

यदि विचार के बिना ही आदिनारायण मुक्ति दे दें तो फिर वृक्षों एवं पशु-पक्षियों को मुक्त क्यों नहीं कर देते ? हम तो चाहते हैं कि सब मुक्त हो जायें। जैसे शराबी चाहता है कि दूसरा शराबी हो, जुआरी चाहता है कि दूसरा जुआरी हो ऐसे ही भगवान और संत चाहते हैं कि दूसरे भी मुक्त हों। लेकिन भगवान और संत भी क्या करें ? दूसरा जब विचार करेगा तभी तो मुक्त होगा। मुक्ति की जिसको प्यास होगी, तड़प होगी, वही मुक्त होगा।

संसार का पूरा राजपाट एक व्यक्ति को मिल जाये लेकिन मुक्ति की प्यास नहीं है तो वह बड़ा अभागा है। जिसको मुक्ति की प्यास है और संसार की वस्तुओं में अरुचि है वह भाग्यशाली है क्योंकि मुक्ति की प्यास ही उसको संतों के निकट ले जायेगी।

मुक्ति की प्यास जगती है संतों के दैवी कार्य में सहभागी होने पर। निष्काम कर्म एवं भगवद्भक्ति से मुक्ति की प्यास जगती है। सत्संग के द्वारा धीरे-धीरे मुक्ति की प्यास जगती है तो काम बन जाता है, नहीं तो करोड़ों जन्म ऐसे ही व्यर्थ चले जाते हैं।

जगत के सुख आदमी को इतना बेवकूफ बना देते हैं कि व्यावहारिक तौर पर तो वह भोग भोगता ही है, चित्र देखकर भी भोग-भोगने की कल्पना में मारा जाता है। आदमी कितना पराधीन हो जाता है ! वह जिन्दा मनुष्य से तो भीख माँगता ही है, मुर्दे से भी, मजारों से भी माँगता रहता है कि : ''हे फलाने पीर ! मुझे यह दे दे, वह दे दे...''

अखा भगत ने कहा है :

सजीवाए निर्जीवाने घड़यो, पछी कहे के मने कंईक दे ।
अखो तमने ई पूछे के, तमारी एक फूटी के बे ?

'सजीव व्यक्ति ने निर्जीव मूर्ति को बनाया और

फिर उसी के आगे गिड़गिड़ाता है कि मुझे कुछ दे। अखा भगत पूछता है कि तुम्हारी एक (आँख) फूट गयी है कि दो ?'

भगवान से भी दिन-रात माँगते रहते हैं। जो बिना माँगे दिन-रात आपकी खबर ले रहा है उसको भी माँग-माँगकर परेशान करते रहते हैं । भगवान झूलेलाल, अम्बे माता, भगवान नारायण आदि की मूर्तियों के आगे गिड़गिड़ाते रहते हैं किन्तु वे अपने अंतर्यामी परमात्मा को क्यों नहीं रिझाते ? मंदिर के देवता की मूर्ति के तो तब दर्शन होंगे जब पुजारी दरवाजा खोलेगा। अज्ञान से इधर-उधर भगवान को खोजते हैं और जो हाजरा-हजूर है, दिल में बैठा है उसका विचार तक नहीं करते। दिल में बैठे हुए देवता को नहीं रिझाया तो मंदिर में बैठे हुए देवता को कब तक रिझाते रहोगे ? मंदिर के देवता को रिझाने का फल यही है कि दिल के देवता को रिझाने की युक्ति बतानेवाले किन्हीं संत-महापुरुष का सत्संग मिल जाये।

विचार करने की कला आ जाये कि : 'मैं कौन हूँ ? सुख-दुःख का अनुभव किसे होता है ? कान ठीक से सुनते हैं कि नहीं, उसको देखनेवाला मैं कौन हूँ ? जिह्वा को खट्टा-मीठा, खारा-खट्टा आदि स्वाद का ज्ञान किसकी सत्ता से मिलता है ? नाक को सूँघने की सत्ता कहाँ से मिलती है ?' ऐसा विचार करते-करते अपने को खोजें।

जिन खोजा तिन पाइयाँ...

जो साधारण जीव हैं उनके लिये सामान्य पूजा कही गयी है- मंदिर की, वृक्ष की, गंगा-यमुना-सरस्वती आदि पवित्र नदियों की पूजा लेकिन जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, जो विचारवान् है उसके लिए अपनी आत्मा ही देव है। वह रोम-रोम में रम रहा है इसलिये उसको 'राम' कहते हैं । वह सबको कर्षित-आकर्षित करता है इसीलिये उसको 'कृष्ण' बोलते हैं । वह शक्ति का उद्गम-स्थान है इसीलिये उसको 'आद्यशक्ति जगदंबा' बोलते हैं । वह इन्द्रियगणों का स्वामी है इसीलिये उसको 'गणपति' बोलते हैं, उसके सिवा और कुछ नहीं है । 'ला इल्लाह इल इल्लाह' इसीलिये उसको 'अल्लाह' बोलते हैं... है वही आत्मदेव, जो अपना-आपा होकर बैठा है।

उस अंतर्यामी आत्मदेव को छोड़कर जो उसे बाहर ढूँढ़ता-फिरता है, वह 'कर्मलेढ़ी' है । हाथ में आये हुए मक्खन के पिण्ड को छोड़कर छाछ चाटता है । 'कर्मलेढ़ी' न बनें । अपने आत्मदेव का ध्यान करें, चिंतन करें, स्मरण करें तो संसार की असारता का अनुभव हो जायेगा और आत्ममस्ती बढ़ जायेगी। ऐसी आत्ममस्ती में मस्त फकीर स्वामी रामतीर्थ ने ही गाया है :

मस्त पड़ा अपनी महिमा में, गैर राम अब और नहीं ।
क्या हमसे भेद छुपाते हैं ? हर हर ॐ ॐ... हर हर ॐ ॐ...
ऋषियों के आइने में, मेरा ही नूर दर्शाया था ।
मुझ ही से शायर लाते हैं, हर हर ॐ ॐ... हर हर ॐ ॐ...

ज्ञानवानों का अनुभव होता है कि : 'वैद्यों का वैद्यकीय ज्ञान भी मुझ आत्मा से आता है, विज्ञानियों का विज्ञान भी मुझ आत्मा से निकलता है, बुद्धिमानों की बुद्धि भी मुझ आत्मा से फुरती है, जिह्वा से मैं ही चखता हूँ, कानों से मैं ही सुनता हूँ, नाक से मैं ही सूँघता हूँ और मन से संकल्प-विकल्प भी मैं ही करता हूँ। ये सब करते हुए भी मैं इन सबसे असंग अमर आत्मा हूँ। ऐसा जो मुझको जानता है वह स्वयं को भी अमर आत्मा जानकर मुक्त हो जाता है । अगर मुझे कोई देहधारी मानता है तो वह भी देहधारी के भाव में फँस मरता है। मैं देह में होते हुए भी देहातीत हूँ। दिखता हूँ फिर भी अदृश्य हूँ और अदृश्य हूँ फिर भी सदृश्य हूँ। यह सच्चिदानंदस्वरूप लाबयान है। इस लाबयान का बयान मैं क्या करूँ ?'

अश्वगंधा : एक श्रेष्ठ बल्य रसायन

अश्वगंधा के अनंत लाभ हैं। इसे दूध के साथ ले सकते हैं। यह शक्ति देता है और वृद्धत्व का साथी है। बाजार में यह २८ रूपये में ८० ग्राम मिलता है किन्तु समिति ऐसा प्रयास कर रही है कि यह २० रूप में १०० ग्राम मिल सके। इसके गुण और लाभ को देखते हुए समिति ने इसके वितरण की जिम्मेदारी ले ली है। 'ऋषि प्रसाद' के अगले अंक में इसके लाभ देखें। तब तक इसके वितरण की सेवा शुरू हो जायेगी।

भगवन्नाम कीर्तन की महिमा

ऋषियों ने कहा : ''महामते ! हम लोगों ने जो कुछ पूछा था, वह सब आपने कह सुनाया। अब आपसे एक प्रश्न और भी करते हैं, उसका उत्तर दीजिए।

सभी तीर्थों के सेवन से जो फल मिलता है, वही फल दूसरे कौन-से कर्म करने से प्राप्त हो सकता है ? सर्वज्ञ सूतजी ! यदि ऐसा कोई कर्म हो तो वह हमें बताइये।''

सूतजी ने कहा : ''महाभाग महर्षिगण। ब्राह्मणादि वर्णों के लिए निश्चय ही नाना प्रकार के कर्मयोग का वर्णन किया गया है, परंतु उसमें एक ही बात सबसे बढ़कर है। जिसने मन, वाणी और क्रिया द्वारा श्रीहरि की भक्ति की है, उसने बाजी मार ली, उसने विजय प्राप्त कर ली, उसकी निश्चय ही जीत हो गयी इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

सम्पूर्ण देवेश्वरों के भी ईश्वर भगवान श्रीहरि की भलीभाँति आराधना करनी चाहिए। हरिनामरूपी मंत्र के द्वारा पापरूपी पिशाचों का समुदाय नष्ट हो जाता है। श्रीहरि की एक बार प्रदक्षिणा करके भी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने का जो फल होता है, उसे प्राप्त कर लेते हैं इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। श्रीहरि की प्रतिमा का दर्शन करने से मनुष्य सब तीर्थों का फल प्राप्त करता है तथा श्रीहरि के उत्तम नाम का जप करके सम्पूर्ण मंत्रों के जप का फल पा लेता है।

न गंगा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करम्।
जिह्वाग्रे वर्तये यस्य हरि रित्यक्षरद्वयम् ॥

- वामन पुराण

ब्राह्मणों ! भगवान के सामने उच्च स्वर से उनके नामों का कीर्तन करते हुए नृत्य करनेवाला मनुष्य गंगा आदि नदियों के जल की भाँति समस्त संसार को पवित्र कर देता है। उस भक्त के दर्शन और स्पर्श से, उसके साथ वार्तालाप करने से तथा उसके प्रति भक्तिभाव रखने से मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

जो श्रीहरि की प्रदक्षिणा करते हुए करताल आदि बजाकर मधुर स्वर तथा मनोहर शब्दों में उनके नामों का कीर्तन करता है, उसने ब्रह्महत्या आदि पापों को मानों ताली बजाकर भगा दिया है।

जो श्रीहरिभक्ति-कथारूपी मुक्तामयी आख्यायिका का श्रवण करता है, उसके दर्शनमात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है।

पण्डित हो या मूर्ख, ब्राह्मण हो या चाण्डाल, यदि वह भगवान का प्यारा भक्त है तो भगवान नारायण स्वयं उसे कष्टों से छुड़ाते हैं।

नामकीर्तन में परिश्रम तो थोड़ा होता है, किन्तु फल भारी-से-भारी प्राप्त होता है। ऐसा जानकर भी जो इसकी महिमा के विषय में विरुद्ध तर्क देते हैं वे अनेकों बार नरक में पड़ते हैं।

इसलिए हरिनाम की शरण लेकर भगवान की भक्ति करनी चाहिए। प्रभु अपने पुजारी को तो पीछे रखते हैं परन्तु नामजप करनेवाले के हृदय में स्फुरित होते ही रहते हैं।

हरिनामरूपी महान् व्रत पापों के पहाड़ को विदीर्ण करनेवाला है। मनुष्य के वे ही पैर सफल हैं जो भगवान की ओर आगे बढ़ते हों। वे ही हाथ धन्य कहे गये हैं, जो भगवान की पूजा में संलग्न रहते हैं। जो मस्तक भगवान के आगे झुकता हो वही उत्तम अंग है। जीभ वही श्रेष्ठ है जो भगवान श्रीहरि की स्तुति करती है। मन भी वही अच्छा है जो उनके चरणों का अनुगमन-चिंतन करता है। रोम भी वही सार्थक कहलाते हैं जो भगवान का नाम लेने पर पुलकित हो जाते हैं। इसी प्रकार आँसू भी वे ही सार्थक हैं जो भगवान की चर्चा के अवसर पर निकलते हैं।

अहो ! संसार के लोग भाग्यदोष से ईश्वर से अत्यंत वंचित हो रहे हैं क्योंकि वे नामोच्चारणमात्र से मुक्ति देनेवाले भगवान का भजन नहीं करते।''

(पद्मपुराण : स्वर्गखण्ड)

स्वामी सतरामदासजी महाराज

[गतांक का शेष...]

※ सेवा ※

स्वामी सतरामदासजी विनय और नम्रता की मानों साक्षात् मूर्ति थे। प्राणिमात्र की सेवा करना वे अपना धर्म समझते थे। वे कहा करते कि सेवा द्वारा ही स्वामी को प्राप्त किया जाता है।

सेवा करत होय निःकामी।
तिस को होत प्राप्त स्वामी॥

- गुरुवाणी

प्राणिमात्र की सेवा में तत्पर रहनेवाले सतरामदासजी को जब साक्षात् ईश्वरतुल्य संत दरवेश की मुलाकात हो जाती तब उनकी भावना का तो कहना ही क्या! प्रेम से जुट जाते उनकी सेवा में। उस समय उनको नात-जात याद नहीं रहती। स्वयं उच्च कोटि के महात्मा होते हुए भी अपने शिष्यों एवं भक्तसमुदाय के आदरभाव का ख्याल न करते हुए अपनी मान-प्रतिष्ठा को भूल संत के चरणों में पहुँच जाते और खुद को उनके चरणों की धूलि मानते।

कहते हैं एक बार वे डतल फकीर और सादक फकीर इन दो रूहानी परिंदों के दर्शन करने हेतु खेरपुर मीरस गये। सादक फकीर भाँग पिया करते थे। सतरामदासजी उनके लिए प्रसाद के तौर पर भाँग ले गये और उनके आगे रखकर प्रणाम करके एक ओर बैठ गये। सादक फकीर उस समय ईश्वर की इबादत करके उठे ही थे। उनकी आँखों में अभी तक उस इलाही इश्क का नशा चढ़ा था। चेहरा भी उस मस्तानी मस्ती का सबूत दे रहा था। लोगों को देखते ही अचानक उनकी प्यार से भरी आँखें जोश में उलट गईं और उन्होंने ऐसा गुस्सा किया कि वहाँ उपस्थित सब लोग भाग गये परन्तु सतरामदासजी बैठे रहे। सतरामदासजी को अकेला पाकर फकीर ने अपना नकली गुस्सा ठंडा कर दिया और उन्हें यह कहकर गले लगाया कि : 'एक आशिक ही दूसरे आशिक को जान सकता है।'

संतों की लीला निराली होती है। उसे समझना साधारण जीव के वश की बात नहीं है।

इसके बाद सतरामदासजी अपने प्रिय शिष्य कँवरराम (जो आगे चलकर साँईं कँवरराम के नाम से विख्यात हुए) और दूसरे एक सेवाधारी रामनदास को डतल फकीर के पास ले गये। वहाँ उन्होंने कँवरराम को श्लोक उच्चारित करने के लिए इशारा किया। कँवरराम ने जैसे ही श्लोक उच्चारा कि फकीर ने उन्हें थप्पड़ मार दी और कहा : ''एक तो मेरे दिमाग में पहले से ही साज बजते रहते हैं और ऊपर से तुम चिल्लाते हो।''

कँवररामजी तो आश्चर्यचकित हो गये। उनको विस्मित देख स्वामी सतरामदासजी ने समझाया : ''संतों के अंतर में आठों प्रहर अनहद नाद होता रहता है। इसलिए उन्हें बाहर के किसी साज-आवाज की जरूरत नहीं रहती। उनके दिलरूपी साज़ में तालिब की तारें वहदत का आलाप आलापती रहती हैं। उनकी रग-रग में रूहानी राग बजता रहता है। ऐसे इलाही आशिक सोते हुए भी इश्क के घूँट भरते रहते हैं। उनकी नींद भी रब की इबादत हो जाती है।''

फिर स्वामी सतरामदासजी के दूसरे सेवाधारी भाई रामनदास ने फकीर को प्रणाम करके आशीर्वाद माँगा तो फकीर ने उनकी पीठ पर जोर से मुक्का मारा और कहा : ''आग लगे तेरी पीठ को।''

ऐसा आशीर्वाद सुनकर भाई रामनदास तो घबराये। अतः उन्हें भी सतरामदासजी ने समझाते हुए कहा : ''बेटा! संतों के हर वाक्य में विशिष्ट अर्थ समाया होता है। फकीर ने तुम्हें आशीर्वाद दिया है कि खोटी मतरूपी तेरी पीठ को आग लगे। तुम्हारा

अंतर उज्ज्वल और निर्मल बने।''

इस तरह अपने शिष्यों को स्वामी सतरामदासजी संतों के बाह्य व्यवहार और बाह्य शब्दों का सही अर्थ बताकर उनकी समझ बढ़ाते थे।

स्वामी सतरामदासजी के दिल में नात-जात का कोई भेद नहीं था। गुलाम हसीन मुस्लिम दरवेश थे फिर भी वे उनके पास जाया करते।

गुलाम हसीन रुड़की में ही रहते थे। उनके शरीर पर हमेशा घाव बने रहते थे। सतरामदासजी रोज उनके घर जाकर उन घावों को साफ करते और मलहम-पट्टी करते। बड़ी मेहनत के बाद उनके घाव सूख पाते थे किन्तु गुलाम हसीन उन्हें कुरेदकर फिर से ताजा कर देते।

एक बार स्वामी सतरामदासजी ने उनसे पूछा :

''आप ऐसा क्यों करते हैं ? क्यों इस तरह अपने शरीर को कष्ट दे रहे हैं ?''

गुलाम हसीन ने जवाब दिया : 'शरीर पर घाव होंगे तो रात में नींद नहीं आएगी और अगर रात में नींद आएगी तो प्रियतम से कैसे मिलेंगे ? कैसे उनकी इबादत करेंगे ? सेज पर सोने से साहेब हरगिज़ नहीं मिलेंगे।

सेज सुते नूं जहप न आवे, नेणें निंढ हराम।
रात्यां जाग्रणां साहेब संभालण, ए फकीरां दा काम॥

- शाह

बाबा गोविन्दरामजी भी बड़े अलमस्त फकीर थे। वे मारवाड़ से रूड़की आकर रहते थे। बड़े गुस्सैल स्वभाव के थे। किसीकी ताकत नहीं थी कि उनके सामने कुछ अनुचित बोल सके। वे रूड़की दरबार के भण्डारे से रोज सब्जी लेने जाते। अगर कोई सेवाधारी उन्हें सब्ज़ी देने से इन्कार करता या सब्ज़ी देने में थोड़ी भी देर करता तो गुस्से में आकर गालियाँ देना शुरू कर देते। उनका गुस्सा देखकर सब सेवाधारी डर जाते। इसलिए भण्डारा शुरू होने से पहले उन्हें सब्ज़ी दे दी जाती थी। उनके ऐसे व्यवहार से परेशान होकर सेवाधारियों ने एक दिन उनके खिलाफ स्वामी सतरामदासजी से फरियाद की। स्वामी सतरामदासजी ने उन्हें हँसते हुए समझाया : ''बच्चों ! संतों की गालियाँ फूलों से कम नहीं होतीं। ये आला दर्जे के आशिक हैं। इनको दुनिया के रीति-रिवाजों की कोई परवाह नहीं है। इसलिए ये जब भी सब्जी लेने आयें तो तुरन्त दे दिया करो। भण्डारे का आरम्भ संतों से शुरू हो तो यह बहुत अच्छी बात है।''

मनमुख की कृपा से बढ़कर संतों की गालियाँ और गुस्से में भी भलाई निहित है।

दुर्जन की करुणा बुरी, भलो साँईं को त्रास...

इतनी सहनशीलता और धीरज था सतरामदासजी में ! (क्रमशः)

गुरुभक्त उद्धव

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

समर्थ रामदास टाकली गाँव के पास किसी एकांत गुफा में समाधिस्थ रहते थे। उसी इलाके में सदाशिव पंत नामक एक धनवान् सद्‌गृहस्थ थे जिनकी पत्नी का नाम था उमा।

उमा भक्तिभाव से संपन्न नारी थी। साधु-संतों के लिये उसके हृदय में अपार श्रद्धा थी। यह वह समय था जब नारियाँ पति की मृत्यु के बाद अपना जीना व्यर्थ समझकर अपनी नश्वर देह को पति की चिता में उनके साथ ही स्वाहा करके भावबल से पति के लोक को प्राप्त कर लेती थीं। सती प्रथा का प्रचार उस समय जारी था।

उमा का पति भी स्वर्गवासी हो गया। अपने पति के शव के साथ उमा भी सती होने के लिये चली। उसने सोचा कि : 'अब मैं सती होने के लिये जा रही हूँ तो क्यों न जाने से पूर्व संत-चरणों में सिर झुका आऊँ ?'

समर्थ रामदास समाधि से उठकर बैठे ही थे कि उमा वहाँ पहुँची। उसने प्रणाम किया तो समर्थ ने आशीर्वाद दिये : ''**अष्टपुत्रवती भव।** आठ पुत्रों की माता बन।''

उमा को हुआ कि : 'इन महापुरुष को पता नहीं है कि मैं सती होने जा रही हूँ। पति का तो देहावसान हो चुका है। ध्यानस्थ होने के कारण इन्हें शायद मेरी स्थिति का पता न हो।' अतः उसने पुनः प्रणाम किया। समर्थ ने पुनः वही आशीर्वाद दिया। उमा ने तीसरी बार प्रणाम किया तो समर्थ को हुआ कि : 'शायद आठ पुत्र इसे कम लग रहे हैं।'

उस जमाने में यवनों का जोर बढ़ गया था जिससे साधु-संत एवं हिन्दू लोग ऐसा मानते थे कि अपनी हिन्दू प्रजा थोड़ी बढ़नी चाहिए। अतः देश एवं संस्कृति की रक्षा के लिये अधिक पुत्रों का आशीर्वाद शुभ माना जाता था। श्रद्धावान्, भगवद्‌भक्त परिवारों में अधिक संतान होना देश के लिए अच्छा है। समर्थ ने पुनः पुनः आशीर्वाद दिये : ''**दशपुत्रवती भव।**''

अब उमा ने सोचा कि संत के वचन झूठे पड़ें यह ठीक नहीं है। अतः जो हकीकत है, वह मुझे कह देना चाहिए। उसने प्रणाम करके कहा : ''स्वामीजी ! मैं सती होने जा रही हूँ। मेरे पति सदा के लिये परलोक सिधार गये हैं।''

समर्थ ने देखा कि यह आशीर्वाद तो झूठा पड़ेगा ! समर्थ अपने समर्थ तत्त्व में स्थित हुए एवं उन्होंने कहा : ''नहीं नहीं, वह मरा नहीं है। अभी वापस आयेगा। मैंने कहा है : '**दशपुत्रवती भव।**' ...तो तुम दस पुत्रवती बनकर ही रहोगी।''

प्रकृति ने करवट ली। सदाशिव पंत का अंतवाहक शरीर पुनः लौटा एवं वह जीवित हो गया। योगबल से यह संभव है।

उमा ने पति को बताया : ''आप चमत्कारिक रूप से यमपुरी से वापस आये हैं। एक समर्थ महात्मा गुफा में समाधिस्थ रहते हैं और वे हैं शिवाजी महाराज के गुरु समर्थ रामदास। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिये हैं। अब हमें एक नहीं, बल्कि दस पुत्र होंगे।''

पति को समर्थ रामदास के प्रति बड़ी श्रद्धा हुई। समर्थजी ने जीवनदान दिया, पुत्र नहीं था तो पुत्रप्राप्ति का वरदान दिया। अतः पत्नी ने कहा तो वह दर्शन के लिए गया।

उसे देखकर समर्थ बोले : ''देखो भाई ! तुम्हें दस पुत्र होंगे। उनमें जो प्रथम पुत्र होगा वह तुम मुझे दक्षिणा में दे देना। देश की सेवा के लिये उसे योगी बनाऊँगा।''

सच्ची सेवा संत एवं योगी ही कर सकते हैं।

बाकी ऐहिक सेवा तो दूसरे लोग भी कर सकते हैं। संसार की ऐहिक चीजों से सच्ची सेवा नहीं हो सकती है, शरीर की सेवा हो सकती है। किसीको सोफा दे दिया, कार दे दी, बँगला दे दिया, उसके लिए 'एयर-कण्डीशन' लगवा दिया तो आपने उसकी सेवा नहीं की बल्कि उसके शरीर की सेवा की है और शरीर तो एक दिन जला दिया जायेगा। मरणधर्मा शरीर से कितना भी ऐश करोगे, अंदर की शांति नहीं मिलेगी। सच्ची शांति तो आत्मा की सेवा में है और आत्मा की सेवा क्या है ? अनुभवी आत्मारामी महापुरुषों के चरणों में जाकर आत्मा-परमात्मा की ओर बढ़ना ही आत्मा की सच्ची सेवा है।

समर्थ : ''तुम्हारा पहला पुत्र संसार की वास्तविक सेवा करेगा। अन्न-वस्त्र से तो ठीक, आत्मज्ञान के प्रसाद से लोगों की सेवा करे अतः पहला पुत्र मुझे अर्पण करना।''

पति-पत्नी दोनों सहमत हो गये कि संत के आशीर्वाद से नया जीवन मिला है तो पहला पुत्र उन्हें दे देंगे। खुशी की बात है।

व्यक्ति जिस समय उदार विचारों में होता है, शुद्ध विचारों में होता है उस वक्त उसका निर्णय उत्तम होता है किन्तु सदैव उदार विचार नहीं रहते, भाव बदलते रहते हैं।

समय पाकर उन्हें पुत्र हुआ। वह चार-पाँच महीने का हो गया तब उमा ने पति से कहा : ''गुरुजी को समाचार दे आइये।''

पति : ''समाचार देंगे तो गुरुजी इस पुत्र को ले जायेंगे।''

समय बीतता गया। एक बार समर्थ रामदास स्वयं उमा के पास गये। पुत्र को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। पुत्र का नाम रखा था उद्धव। समर्थ ने कहा :

''अभी इसे अपने ही पास रखो।''

माता उमा यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। दिन-प्रतिदिन बालक बड़ा होने लगा। वह छः वर्ष का हुआ। तब उमा ने एक दिन बालक को समझाते हुए कहा :

''बेटा ! तेरे पिता का स्वर्गवास हो गया था। समर्थ रामदास स्वामी के आशीर्वाद से तेरे पिता को नया जीवन मिला है, फिर तेरा जन्म हुआ है।''

उद्धव श्री समर्थ के दर्शन करके बड़ा प्रसन्न हुआ। माता उमा रोज उसे श्री समर्थ की छोटी-छोटी बातें बताती। बुद्धिमती माँ संतों की जीवनियाँ और उनके चमत्कार एवं सुंदर कथाएँ बताती। भगवान की कथाएँ कहती। इस प्रकार माता उमा ने बालक में भक्तिभाव, साधु-दर्शन, सत्संग के विचार भर दिये।

जिन बालकों में साधु-दर्शन, सत्संग एवं भक्तिभाव के विचार नहीं हैं उन बालकों में असाधुता के विचार ही होंगे, अभक्ति के विचार ही होंगे। वे सदाचारी एवं समाजपोषक नहीं बनेंगे अपितु वे दुराचारी, विलासी, समाजशोषक ही बनेंगे। माताएँ अपने देश, समाज, कुल की जितनी सेवा कर सकती हैं उतनी सेवा दूसरा कोई नहीं कर सकता क्योंकि बालक माता के पास ज्यादा रहता है। माता उसके लिये रसोइये का काम करती है, मित्र का काम करती है, शिक्षक का काम करती है, उसका मल-मूत्र उठाने का काम भी करती है तो अनुशासक का काम भी माता ही करती है। बालक ज्यादे समय तक माता के पास रहता है और बचपन के संस्कार उस पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

बालक उद्धव में उत्तम संस्कारों का सिंचन हुआ। उसने हठ पकड़ी : ''मैं यज्ञोपवीत (जनेऊ) की दीक्षा तभी लूँगा जब समर्थ स्वामी रामदास पधारेंगे।'' ...परंतु पिता ने उसकी बात न मानी और यज्ञोपवीत की तैयारी की। इतने में वहाँ समर्थ रामदास स्वामी प्रगट हुए। उद्धव खूब प्रसन्न हुआ। यज्ञोपवीत की दीक्षा पूरी हुई। समर्थ ने दंपति से कहा : ''अब पुत्र को अर्पण करो।''

''भले, गुरुदेव ! ले जाइये। ...परंतु प्रथम पुत्र है, थोड़ी दया करें तो अच्छा हो।''

किन्तु उद्धव कहने लगा : ''मैं तो गुरुजी के साथ ही जाऊँगा।''

पिता ने पुत्र तो सौंपा किन्तु आँसू बहाते हुए।

गाँव के लोग भी कहने लगे : 'इतना कोमल और मासूम बालक बाबाजी के साथ जायेगा !' बालक को भेजने में माता-पिता का संकल्प थोड़ा ठण्डा पड़ने लगा। अतः समर्थ रामदासजी ने टाकली गाँव में हनुमानजी का मंदिर बनवाया एवं उद्धव से कहा :

''तू यहीं रह। मैं भी यदा-कदा यहाँ आकर तुझसे मिलूँगा। तेरे माता-पिता भी तुझसे यहाँ मिल सकेंगे और हनुमानजी भी एक दिन तुझसे आकर मिलेंगे। हनुमानजी की पूजा करना। गाँव के लोग तेरे भोजन की व्यवस्था कर देंगे। मंत्र एवं साधना की जो विधि बतायी है उसके अनुसार साधना करना और यहीं रहना।'' इस प्रकार उस मंदिर में उद्धव की नियुक्ति करके समर्थ ने वहाँ से विदा ली।

छः वर्ष का बालक ११ वर्ष का हुआ... १२ वर्ष का हुआ... ऐसा करते-करते १८ वर्ष का हुआ। सद्गुरु की आज्ञा के अनुसार उसने प्रतिदिन पूजा-पाठ, जप-ध्यान अविरत जारी रखा। वह प्रतिदिन गुरुदेव की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन उसके मन में हुआ कि : 'गुरु महाराज ने तो कहा था कि मैं थोड़े समय में आऊँगा। १२ वर्ष हो गये... क्या गुरुदेव मुझसे नाराज हो गये हैं ?'

उसने हनुमानजी से प्रार्थना की :

जय जय जय हनुमान गोसाईं।
कृपा करहुँ गुरुदेव की नाईं॥

'जैसे गुरुदेव निःस्वार्थ प्रेम करते हैं और कृपा करते हैं उसी प्रकार हे हनुमानजी ! आप मुझ पर कृपा करें।'

आप जिस देवता का पूजन करते हैं और आपकी पूजा सच्चाई और श्रद्धा-भक्ति से होती है, पूजा देवता तक पहुँचती है तो आप जो चाहें, आपको देवता वही देते हैं किन्तु उससे आपका हित होगा कि अहित, यह जवाबदारी देवता की नहीं रहती... लेकिन गुरुदेव एवं भगवान आपको वही देंगे जिसमें आपका हित होगा। जिसमें आपका अहित होगा वह आपको नहीं देंगे। (क्रमशः)

*

स्वधर्म-निष्ठा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

गीता में कहा गया है :

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

'अपने धर्म में मर जाना भी श्रेयस्कर है किन्तु दूसरे का धर्म भयावह है।' (गीता : ३.३५)

किसीको धर्मच्युत करने की चाहे कोई लाख कोशिशें क्यों न करे, यदि वह बुद्धिमान् होगा तो न तो किसीके प्रलोभन में आयेगा न ही भय में, वह तो हर कीमत पर अपने ही धर्म में अडिग रहेगा।

ईसाईयतवाले गाँव-गाँव जाकर प्रचार करते हैं कि : ''हमारे धर्म में आ जाओ। हम तुमको मुक्ति दिलायेंगे।''

एक समझदार वृद्ध सज्जन ने उन्हें पूछा :

''मुक्ति कौन देगा ?''

''यीशु भगवान देंगे।''

''यीशु भगवान कौन हैं ?''

''वे भगवान के बेटे हैं।''

तब उस वृद्ध सज्जन ने कहा : ''भगवान के बेटे से मुक्ति क्यों माँगें ? हम तो सीधे ही भगवान का ज्ञान पा रहे हैं, फिर भगवान के बेटे के पास क्यों जायें ?''

इतना ज्ञान तो भारत का एक ग्रामीण किसान भी रखता है कि भगवान के बेटे से क्या मुक्ति माँगें ? जिस बेटे को खीलें लगी और खून बहाते-बहाते वह चला गया, उससे हम मुक्ति माँगें ? इससे तो जो मुक्तात्मा-परमात्मा श्रीकृष्ण विघ्न-बाधाओं के बीच

भी चैन की बंसी बजा रहे हैं, जिनको देखते ही चिंता गायब हो जाती है एवं प्रेम प्रगट होने लगता है उन्हीं से सीधी मुक्ति क्यों न ले लें ? भगवान के बेटे से हमको मुक्ति नहीं चाहिए । हम तो भगवान से ही मुक्ति लेंगे । कैसी उत्तम समझ है !

*

भारत का एक बालक कान्वेन्ट स्कूल से अपना नाम खारिज करवाकर भारतीय पद्धति से पढ़ायी जानेवाली शाला में भर्ती हो गया। उस लड़के की दृष्टि बड़ी पैनी थी। उसने देखा कि शाला के प्रधानाचार्य कुर्ता एवं धोती पहनकर पाठशाला में आते हैं। अतः वह भी अपनी पाठशाला का गणवेश उतारकर धोती-कुर्ता में पाठशाला जाने लगा। उसे इस प्रकार जाते देखकर पिता ने पूछा : ''बेटा ! तूने यह क्या किया ?''

बालक : ''पिताजी ! यह हमारी भारतीय वेशभूषा है । देश तब तक शाद-आबाद नहीं रह सकता जब तक हम अपनी संस्कृति का और अपनी वेशभूषा का आदर नहीं करते । पिताजी ! मैंने कोई गलती तो नहीं की है ?''

पिताजी : ''बेटा ! गलती तो नहीं की लेकिन ऐसा पहन कैसे लिया ?''

बालक : ''पिताजी ! हमारे प्रधानाचार्यजी यही पोशाक पहनते हैं। टाई, शर्ट, कोट, पैन्ट आदि तो ठण्डे प्रदेशों की आवश्यकता है। हमारा तो गरम प्रदेश है। हमारी वेशभूषा तो ढीली-ढाली ही होनी चाहिए। यह वेशभूषा स्वास्थ्यप्रद भी है और हमारी संस्कृति की पहचान भी।''

पिता ने बालक को गले लगाया एवं कहा :

''बेटा ! तू बड़ा होनहार है। किसीके विचारों से तू दबना नहीं। अपने विचारों को बुलंद रखना। बेटा ! तेरी जय-जयकार होगी।''

पाठशाला में पहुँचने पर अन्य विद्यार्थी उसे देखकर दंग रह गये कि यह क्या ! जब उस बालक से पूछा गया कि : ''तू पाठशाला का गणवेश पहनकर क्यों नहीं आया ?'' तब उसने कहा :

''पाश्चात्य देशों में ठण्डी रहती है अतः वहाँ शर्ट-पैन्ट आदि की जरूरत पड़ती है। ठण्डी हवा शरीर में घुसकर सर्दी न कर दे इसलिए वहाँ के लोग 'टाई' बाँधते हैं। हमारे देश में तो गर्मी है । फिर हम उनके पोशाक की नकल क्यों करें ? जब हमारी पाठशाला के प्रधानाचार्य भारतीय पोशाक पहन सकते हैं तो भारतीय विद्यार्थी क्यों नहीं पहन सकते ?''

उस भारतीय बालक ने अन्य विद्यार्थियों को भी अपनी संस्कृति के प्रति प्रोत्साहित किया। उसने देखा कि : 'कान्वेन्ट स्कूल में पादरी लोग हिन्दू धर्म की निंदा करते हैं और माता-पिता की अवहेलना करना सिखाते हैं। हमारे शास्त्र तो कहते हैं : **'मातृदेवो भवः । पितृदेवो भवः। आचार्य देवो भवः।'** ...और अमेरिका में कहते हैं कि माँ या बाप डाँट दें तो पुलिस को खबर कर दो। जो माता-पिता को भी दंडित करने की सीख दे ऐसी शिक्षा हम क्यों पायें ? हम तो भारतीय पद्धति से शिक्षा देनेवाली पाठशाला में ही पढ़ेंगे।' ऐसा सोचकर उस बालक ने कान्वेन्ट स्कूल से अपना नाम कटवाकर भारतीय पाठशाला में दर्ज करवाया था।

इतनी छोटी-सी उम्र में भी अपने राष्ट्र का, अपने धर्म का एवं अपनी संस्कृति का आदर करनेवाले वे बालक थे सुभाषचंद्र बोस।

*

विद्यालय में बच्चों में मिठाई बाँटी जा रही थी। जब एक १० वर्ष के बालक को मिठाई का टुकड़ा दिया गया तो उसने पूछा : ''मिठाई किस बात की है ?''

कैसा बुद्धिमान् रहा होगा वह बालक ! जीभ का लंपट नहीं रहा होगा वरन् विचार का धनी रहा होगा।

बालक को बताया गया : ''आज महारानी विक्टोरिया का 'बर्थ डे' (जन्मदिन) है इसलिये खुशी मनाई जा रही है।''

बालक ने फटाक से उस मिठाई के टुकड़े को नाली में फेंक दिया और कहा : ''रानी विक्टोरिया अंग्रेजों की रानी है और उन अंग्रेजों ने हमको गुलाम बनाया है। गुलाम बनानेवालों के जन्मदिन की खुशियाँ हम क्यों मनायें ? हम तो तब खुशियाँ मनायेंगे जब हम अपने भारत देश को आजाद कर पायेंगे।''

उस बालक का नाम था केशवराम बलिराम हेडगेवार। आगे चलकर उसीने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर. एस. एस.) की स्थापना की, जिसके संस्कार आज दुनियाभर के बच्चों और जवानों के

दिल तक पहुँच चुके हैं।

*

एक पादरी किसी कान्वेन्ट स्कूल में विद्यार्थियों के आगे हिन्दू धर्म की निंदा कर रहा था एवं अपनी ईसाईयत की डींग हाँक रहा था। इतने में एक हिम्मतवान् लड़का उठ खड़ा हुआ एवं पादरी को भी तौबा पुकारनी पड़े, ऐसा सवाल किया। लड़के ने कहा : ''पादरी महोदय ! क्या आपका ईसाई धर्म हिन्दू धर्म की निंदा करना सिखाता है ?''

पादरी निरुत्तर हो गया। फिर थोड़ी देर बाद कूटनीति से बोला :

''तुम्हारा धर्म भी तो निंदा करता है ?''

उस लड़के ने कहा : ''हमारे धर्मग्रंथ में कहाँ किसी धर्म की निंदा की गयी है ? गीता में तो आता है : **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।** 'ज्ञान के समान पवित्र कोई चीज दुनिया में नहीं है।'

गीता के एक-एक शब्द में मानवमात्र का उत्थान करने का सामर्थ्य छुपा हुआ है। ऐसा ज्ञान देनेवाली गीता में कहाँ किसीके धर्म की निंदा की गयी है ? हमारे और भी धर्मग्रंथ-रचयिता भगवान वेदव्यासजी का श्लोक भी सुन लो :

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुवर्त्म तत्।
अविरोधाद् यो धर्मः स धर्मः सत्य विक्रम ॥

'हे विक्रम ! जो धर्म किसी दूसरे धर्म का विरोध करता है वह धर्म नहीं, कुमार्ग है। धर्म वही है जिसका किसी धर्म से विरोध नहीं है।'

पादरी निरुत्तर हो गया।

वही १०-११ साल का लड़का आगे चलकर गीता, रामायण, उपनिषद् आदि ग्रन्थों का अध्ययन करके एक प्रसिद्ध धुरंधर दार्शनिक बना एवं भारत के राष्ट्रपति पद पर शोभायमान हुआ। उसका नाम था डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्।

कैसी हिम्मत और कैसा साहस था भारत के उन नन्हें-नन्हें बच्चों में ! उनके साहस, स्वाभिमान एवं स्वधर्म-प्रीति ने ही आगे चलकर उन्हें भारत का प्रसिद्ध नेता, राजनेता या दार्शनिक बना दिया।

जो धर्म की रक्षा करते हैं, धर्म उनकी रक्षा अवश्य करता है। उठो, जागो, भारतवासियों ! फिर से विधर्मियों की कुचालों एवं षड्यंत्रों के कारण पराधीन होना पड़े उससे पहले ही अपनी संस्कृति के गौरव को पहचानो। अपने राष्ट्र की अस्मिता की रक्षा के लिये कमर कसकर तैयार हो जाओ। अब भी वक्त है... फिर कहीं पछताना न पड़े। भगवान एवं भगवद्प्राप्त संतों की कृपा तुम्हारे साथ है फिर भय किस बात का ? देर किस बात की ? शाबाश वीर ! शाबाश !!

*

'ऋषि प्रसाद' स्वर्णपदक प्रतियोगिता

'ऋषि प्रसाद स्वर्ण पदक प्रतियोगिता' के अंतर्गत पहले १० सेवाधारियों को पूज्यश्री के ६०वें अवतरण दिवस (अप्रैल २००१) पर पुरस्कृत किया जायेगा। भारत के सभी आश्रम, योग वेदान्त सेवा समितियाँ तथा 'ऋषि प्रसाद' सेवाधारीगण प्रसंगानुरूप भव्य आयोजन में जुट गये हैं।

'ऋषि प्रसाद स्वर्णपदक प्रतियोगिता' में उत्साह से संलग्न सेवाधारियों में से पहले दस जिन सेवाधारियों की सदस्य संख्या वर्त्तमान में अधिकतम चल रही है उन भाग्यशालियों के नाम निम्नानुसार हैं :

क्रम	नाम	शहर
१.	श्री विश्वनाथ अग्रवाल	दिल्ली
२.	श्रीमती जया कृपलानी	भोपाल
३.	श्री वजुभाई ढोलरिया	सूरत
४.	श्री वृन्दावन गुप्ता	दिल्ली
५.	श्री अतुलभाई विठलाणी	राजकोट
६.	श्री घनश्याम करनानी	दिल्ली
७.	श्री महेशचंद्र शर्मा	कलकत्ता
८.	श्री त्रिलोक सिंह	हिसार
९.	श्री दिनेश भाई जोशी	ओढव-अमदावाद
१०.	श्रीमती कावेरी सरकार	जामनगर

...तो आएँ... देर न करें... अभी भी काफी समय है। आप भी इस प्रतियोगिता में सहभागी होकर दैवी कार्य में जुट जायें और आज ही अपना सेवाधारी क्रमांक और रसीद बुकें 'ऋषि प्रसाद' मुख्यालय, अमदावाद से प्राप्त करें।

नोट : इस प्रतियोगिता में सेवाधारी द्वारा बनाई गयी एक आजीवन सदस्यता दो वार्षिक सदस्यता के बराबर मानी जायेगी।

काश ! यदि आज के नेता भी ऐसे होते...

[लालबहादुर शास्त्री जयंती : २ अक्तूबर २०००]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सन् १९६५ में जब पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया था तब भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्रीजी ने देश की जनता से अपील की थी कि : ''घर का खर्चा कम कर दो क्योंकि युद्ध के समय सरकार को धन की अधिक आवश्यकता होती है।''

देश की जनता से तो ऐसी अपील की परन्तु इससे पहले ही स्वयं शास्त्रीजी ने अपने घर के खर्चों में कटौती कर दी थी। उनकी पत्नी श्रीमती ललिता शास्त्री प्रायः अस्वस्थ रहती थीं। उनके घर में सफाई करने तथा कपड़े धोने के लिए एक बाई आती थी। शास्त्रीजी ने उस बाई को दूसरे दिन से आने के लिए मना कर दिया। जब बाई ने पूछा कि : ''कपड़े धोने और सफाई का काम कौन करेगा ?'' तब शास्त्रीजी ने कहा : ''अपने कपड़ों और कमरे की सफाई मैं स्वयं कर लूँगा तथा बाकी के घर की सफाई अपने बच्चों से करवा लूँगा।''

शास्त्रीजी के सबसे बड़े बेटे को अंग्रेजी का 'ट्यूशन' पढ़ाने के लिए एक अध्यापक उनके घर आता था। शास्त्रीजी ने उसे भी आने से मना कर दिया। अध्यापक ने कहा : ''आपका बेटा अंग्रेजी में बहुत कमजोर है। यदि परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होगा तो उसका एक साल बर्बाद हो जायेगा।'' इस पर शास्त्रीजी ने कहा : ''इस देश के लाखों बच्चे हर साल अनुत्तीर्ण हो जाते हैं। यदि मेरा बेटा भी अनुत्तीर्ण हो जायेगा तो इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? मैं कोई विशेष व्यक्ति तो हूँ नहीं।''

एक दिन शास्त्रीजी की पत्नी ललिताजी ने कहा : ''आपकी धोती फट गयी है। आप नई धोती ले आइए।'' शास्त्रीजी बोले : ''अच्छा तो यह होगा कि तुम सुई-धागे से इसकी सिलाई कर दो। अभी नयी धोती लाने के बारे में मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। मैंने ही अपने देशवासियों से बचत का आह्वान किया है अतः मुझे स्वयं भी इसका पालन करना चाहिए। मैं भी इस देश का एक नागरिक हूँ और देश के मुखिया के पद पर आसीन होने के नाते यह नियम सबसे पहले मेरे ही घर से लागू होना चाहिए।''

धन्य हैं ऐसे प्रधानमंत्री ! ऐसी निःस्वार्थ महान् आत्माएँ जब किसी पद पर बैठती हैं तो उस पद की शोभा बढ़ती है। यदि देश की सम्पत्ति को घोटालेबाजी से स्विस बैंकों में जमा करनेवाले भारत के घोटालेबाज नेता शास्त्रीजी की सीख को अपने जीवन में अपनाते तो देश और अधिक उन्नति की राह पर होता।

✲

पवित्रता और सच्चाई, विश्वास और भलाई से भरा हुआ मनुष्य उन्नति का झण्डा हाथ में लेकर जब आगे बढ़ता है तब किसकी मजाल है कि बीच में खड़ा रहे ? यदि आपके दिल में पवित्रता, सच्चाई और विश्वास है तो आपकी दृष्टि लोहे के पर्दे को भी चीर सकेगी। आपके विचारों की ठोकर से पहाड़-के-पहाड़ भी चकनाचूर हो सकेंगे। ओ जगत के बादशाहों ! आगे से हट जाओ। यह दिल का बादशाह पधार रहा है।

- 'जीवन रसायन' पुस्तक से

राजकुमारी मल्लिका

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

जैन धर्म में कुल २४ तीर्थंकर हो चुके हैं। उनमें एक राजकन्या भी तीर्थंकर हो गयी जिसका नाम था मल्लियनाथ।

राजकुमारी मल्लिका इतनी खूबसूरत थी कि कई राजकुमार व राजे उसके साथ ब्याह रचाना चाहते थे लेकिन वह किसीको पसंद नहीं करती थी। आखिरकार उन राजकुमारों व राजाओं ने आपस में एकजुट होकर मल्लिका के पिता को किसी युद्ध में हराकर मल्लिका का अपहरण करने की योजना बनायी।

मल्लिका को इस बात का पता चल गया। उसने राजकुमारों व राजाओं को कहलवाया कि : ''आप लोग मुझ पर कुर्बान हैं तो मैं भी आप सब पर कुर्बान हूँ। तिथि निश्चित करिये। आप लोग आकर बातचीत करें। मैं आप सबको अपना सौन्दर्य दे दूँगी।''

इधर मल्लिका ने अपने जैसी ही एक सुंदर मूर्ति बनवायी थी एवं निश्चित की गयी तिथि से दो-चार दिन पहले से वह अपना भोजन उसमें डाल दिया करती थी। जिस हॉल में राजकुमारों व राजाओं को मुलाकात देनी थी, उसी हॉल में एक ओर वह मूर्ति रखवा दी गयी।

निश्चित तिथि पर सारे राजा व राजकुमार आ गये। मूर्ति इतनी हू-बहू थी कि उसकी ओर देखकर राजकुमार विचार ही कर रहे थे कि : 'अब बोलेगी... अब बोलेगी...' इतने में मल्लिका स्वयं आयी तो सारे राजा व राजकुमार उसे देखकर दंग रह गये कि : 'वास्तविक मल्लिका हमारे सामने बैठी है तो यह कौन है !'

मल्लिका बोली : ''यह प्रतिमा है। मुझे यही विश्वास था कि आप सब इसको ही सच्ची मानेंगे और सचमुच में मैंने इसमें सच्चाई छुपाकर रखी है। आपको जो सौन्दर्य चाहिए वह मैंने इसमें छुपाकर रखा है।''

यह कहकर ज्यों-ही मूर्ति का ढक्कन खोला गया, त्यों-ही सारा कक्ष दुर्गंध से भर गया। पिछले चार-पाँच दिन से जो भोजन उसमें डाला गया था उसके सड़ जाने से ऐसी भयंकर बदबू निकल रही थी कि सब 'छी-छी...' कर उठे।

तब मल्लिका ने वहाँ आये हुए सभी को संबोधित करते हुए कहा :

''भाइयों ! जिस अन्न, जल, दूध, फल, सब्जी इत्यादि को खाकर यह शरीर सुन्दर दिखता है, मैंने वे ही खाद्य-सामग्रियाँ चार-पाँच दिनों से इसमें डाल रखी थीं। अब ये सड़कर दुर्गंध पैदा कर रही हैं। दुर्गंध पैदा करनेवाले इन खाद्यान्नों से बनी हुई चमड़ी पर आप इतने फिदा हो रहे हो तो इस अन्न को रक्त बनाकर सौन्दर्य देनेवाली यह आत्मा कितनी सुंदर होगी ! भाइयों ! अगर आप इसका ख्याल रखते तो आप भी इस चमड़ी के सौन्दर्य का आकर्षण छोड़कर उस परमात्मा के सौन्दर्य की तरफ चल पड़ते।''

मल्लिका की ऐसी सारगर्भित बातें सुनकर कुछ राजकुमार भिक्षुक हो गये और कुछ राजकुमारों ने काम-विकार से अपना पिण्ड छुड़ाने का संकल्प किया। उधर मल्लिका संतशरण में पहुँच गयी, त्याग और तप से अपनी आत्मा को पाकर मल्लियनाथ तीर्थंकर बन गयी। अपना तन-मन सौंपकर वह भी परमात्ममय हो गयी।

आज भी मल्लियनाथ जैन धर्म के प्रसिद्ध उन्नीसवें तीर्थंकर के नाम से सम्मानित होकर पूजी जा रही हैं।

✲

शरदपूर्णिमा

[शरद पूर्णिमा दिनांक : १३ अक्तूबर २०००]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

शरदपूर्णिमा की रात्रि का विशेष महत्त्व है। माना जाता है कि इस रात्रि को चंद्रमा अपनी पूर्ण कलाओं के साथ पृथ्वी पर शीतलता, पोषकशक्ति एवं शांतिरूपी अमृतवर्षा करता है। इससे चित्त को शांति मिलती है और साथ ही पित्त का प्रकोप भी शांत होता है। मनुष्य को चाहिए कि वह इस महत्त्वपूर्ण रात्रि की चाँदनी का सेवन करे।

महर्षि वेदव्यासजी ने 'श्रीमद्‌भागवत' के दसवें स्कंध में शरदपूर्णिमा की रात्रि को अपनी पूर्ण कलाओं के साथ धरती पर अवतरित परब्रह्म श्रीकृष्ण के महा रासोत्सव की रात्रि कहा है। शरदपूर्णिमा की रात्रि को चंद्रमा की शीतलतारूपी अमृतवर्षा की तरह भगवान श्रीकृष्ण ने भी अपनी रासलीला में धरती पर भक्तिरस छलकाया था। इस रासलीला में हजारों धनभागी गोपियों ने योगेश्वर श्रीकृष्ण के सान्निध्य में भक्तिरस की प्यालियाँ पीकर अपने जीवन को धन्य किया था, जिसके स्मरणमात्र से भक्तों का मन प्रभु-प्रेम के रस में सराबोर हो जाता है।

इस दिन ब्रज में खूब उत्सव मनाया जाता है। यह दिन स्वामी कार्तिकेय के प्रागट्य का दिन भी माना जाता है।

शरदपूर्णिमा के दिन नये चावल के पोहे और दूध की खीर बनाकर उसे चंद्र की चाँदनी में रखते हैं, फिर खाते हैं। खीर बनाते वक्त उसमें सोने के गहने भी डाले जाते हैं। दूध की खीर या दूध-पोहे चाँदनी रात्रि में नौ से बारह बजे के बीच मलमल के महीन कपड़े से ढँककर रखे जायें। दूध व दूध से बने पदार्थों में द्राक्ष, किशमिश कभी नहीं डालना चाहिए। काजू व चिरौंजी (चारौली) अल्प मात्रा में डाल सकते हैं। सत्संग, सुमिरन, जप-ध्यान आदि कर वह प्रसाद आरोग्य लाभ, प्रसन्नता लाभ, आत्मशीतलता लाभ की भावना से खाया जाए। श्वेत पोहे, श्वेत दूध, श्वेत मिश्री और चंद्रमा की चाँदनी भी श्वेत... अतः इस उत्सव को 'धवल उत्सव' भी कह सकते हैं।

आज के दिन चंद्रमा पृथ्वी के बहुत नजदीक होता है और उसकी उज्ज्वल किरणें पेय एवं खाद्य पदार्थों में पड़ती हैं तो उसे खानेवाले व्यक्ति को छोटी-मोटी बीमारियाँ नहीं होतीं। इससे पित्त-प्रकोप का शमन होता है, शरीर पुष्ट होता है।

भगवान ने भी कहा है :

पुष्णामि चौषधिः सर्वा सोमो भूत्वा रसात्मकः।

'मैं चंद्रमा होकर औषधियों को पुष्ट करता हूँ।'

आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाये तो चंद्र का मतलब है शीतलता। बाहर कितने भी परेशान करनेवाले प्रसंग आयें लेकिन आपके दिल में कोई फरियाद न उठे। आप भीतर से ऐसे पुष्ट हों कि बाहर की छोटी-मोटी मुसीबतें आपको परेशान न कर सकें।

ऐसा नहीं कि श्रीकृष्ण के जीवन में सुख-ही-सुख था, श्रीराम के जीवन में सुख-ही-सुख था। नहीं... श्रीरामजी के राजतिलक की तैयारियाँ होते-होते उन्हें वनवास मिल गया। राज्याभिषेक के बदले नंगे पैर वनगमन फिर भी वही शांति, वही समता, वही सौम्यता! श्रीकृष्ण के जीवन में कई विकट प्रसंग आये किन्तु श्रीकृष्ण सदैव मुस्कराते रहे। इसीलिये उनके नाम के पीछे 'चंद्र' शब्द लगता है :

'श्रीरामचंद्र... श्रीकृष्णचंद्र...

जैसे चंद्र शीतल है और शीतलता देता है, वैसे ही अपने चित्त की शीतलता सदा बनाये रखना यही शरदपूर्णिमा का उद्देश्य है। बाहर का चाँद तो बादल में छिप भी सकता है लेकिन भीतर का चाँद तो कभी छिपता ही नहीं है। हजार बादल भी उस चाँद को नहीं छिपा सकते, वह ऐसा चम-चम चमक रहा है और वही है आपका आत्मचाँद। उस आत्मचाँद को जानना यही मानवमात्र का परम लक्ष्य है।

चाँदणा कुल जहाण का तुम,
तेरे आसरे होय व्यवहार सारा।
तू सबदी आँख में चमकदा ॥

हे चैतन्य चाँद! तुम्हीं सभी के आँख में चमचम चमक रहे हो। अपनी शीतलता, सौम्यता, समरसता व सौंदर्य से सजे रहो।

*

दीपावली

[दीपावली दिनांक : २६ अक्तूबर २०००]

तात्त्विक दृष्टि से देखा जाये तो मनुष्यमात्र सुख का आकांक्षी है क्योंकि उसका मूलस्वरूप सुख ही है। वह सुखस्वरूप आत्मा से ही उत्पन्न हुआ है। जैसे पानी कहीं भी बरसे, सागर की ओर ही जाता है क्योंकि उसका उद्‌गम-स्थान सागर है। हर चीज अपने उद्‌गम-स्थान की ओर ही आकर्षित होती है। यह स्वाभाविक है, तार्किक सिद्धान्त है।

जीव का मूलस्वरूप है सत्, चित् और आनंद। सत् की सत्ता से इसका अस्तित्व मौजूद है, चेतन की सत्ता से इसमें ज्ञान मौजूद है और आनंद की सत्ता से इसमें सुख मौजूद है। ...तो यह जीव निकला है सच्चिदानंद परमात्मा से। जीवात्मा सच्चिदानंद परमात्मा का अविभाज्य अंग है। ये सारे पर्व, उत्सव और कर्म हमारे ज्ञान, सुख और आनंद की वृद्धि के लिए एवं हमारी शाश्वतता की खबर देने के लिये ऋषि-मुनियों ने आयोजित किये हैं।

अभी मनोवैज्ञानिक बोलते हैं कि जिस आदमी को लंबा जीवन जीना है उसको सतत एक जैसा काम नहीं करना चाहिए, कुछ नवीनता चाहिए, परिवर्तन चाहिए। आप अपने घर का सतत एक जैसा काम करते हैं तो ऊब जाते हैं किन्तु जब उस काम को थोड़ी देर के लिए छोड़कर दूसरे काम में हाथ बँटाते हैं और फिर उस पहले काम में हाथ डालते हैं तो ज्यादा उत्साह से काम कर पाते हैं। बदलाहट आपकी माँग है। कोल्हू के बैल जैसा जीवन जीने से आदमी थक जाता है, ऊब जाता है तो पर्व और उत्सव उसमें बदलाहट लाते हैं।

बदलाहट भी तीन प्रकार की होती है : सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। जो साधारण मति के हैं, निगुरे हैं वे मानसिक बदलाहट करके थोड़ा अपने को मस्त बना लेते हैं। 'रोज-रोज क्या एक जैसा... आज छुट्टी का दिन है, जरा 'वाइन' पियो, क्लब में जाओ। अपने घर में नहीं, किसी होटल में जाकर खाओ-पियो, रहो...'

परदेश में बदलाहट की यह परंपरा चल पड़ी। तामसिक बदलाहट जितना हर्ष लाती है, उतना ही शोक भी लाती है। ऋषियों ने राजसी-तामसी बदलाहट की अपेक्षा सात्त्विक बदलाहट लाने का अवसर हमें पर्वों के द्वारा दिया।

रोज एक जैसा भोजन करने की अपेक्षा उसमें थोड़ी बदलाहट लाना तो ठीक है लेकिन भोजन में सात्त्विकता होनी चाहिए और स्वयं में दूसरों के साथ मिल-बाँटकर खाने की सद्‌भावना होनी चाहिए। ऐसे ही कपड़ों में भी बदलाहट भले लाओ लेकिन परिवार के लिये भी लाओ और गरीब-गुरबों को भी दान करो।

त्यागात् शांतिरनंतरम्... त्याग से तत्काल ही शांति मिलती है। जो धनवान् हैं, जिनके पास वस्तुएँ हैं, उन वस्तुओं का वितरण करने से उनका चित्त उन्नत होगा एवं सच्चिदानंद में प्रविष्ट होगा और जिनके पास धन, वस्तु आदि का अभाव है वे इच्छा-तृष्णा का त्याग करके प्रभु का चिंतन कर अपने चित्त को प्रभु के सुख से भर सकते हैं। ...तो

सत्-चित्-आनंद से उत्पन्न हुआ यह जीव अपने सत्-चित्-आनंदस्वरूप को पा ले इसलिए पर्वों की व्यवस्था है।

इनमें दीपावली उत्सवों का एक गुच्छ है।

भोले बाबा कहते हैं :

प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा...

अर्थात् आपकी बुद्धि में आत्मा का प्रकाश आये ऐसी तात्त्विक दिवाली मनाना। ऐहिक दिवाली का उद्देश्य यही है कि हम तात्त्विक दिवाली मनाने में भी लग जायें। दिवाली में बाहर के दीये जरूर जलायें, बाहर की मिठाई जरूर खायें-खिलायें, बाहर के वस्त्र-अलंकार जरूर पहनें-पहनायें, बाहर का कचरा जरूर निकालें लेकिन भीतर का प्रकाश भी जगमगायें, भीतर का कचरा भी निकालें और यह काम प्रज्ञा दिवाली मनाने से ही होगा।

दीपावली पर्व में चार बातें होती हैं : कूड़ा-करकट निकालना, नयी चीज लाना, दीये जगमगाना और मिठाई खाना-खिलाना।

दिवाली के दिनों में घर का कूड़ा-करकट निकालकर उसे साफ-सुथरा करना स्वास्थ्य के लिये हितावह है। ऐसे ही 'मैं देह हूँ... यह संसार सत्य है... इसका गला दबोचूँ तो सुखी हो जाऊँगा... इसका छीन-झपट लूँ तो सुखी हो जाऊँगा... इसको पटा लूँ तो सुखी हो जाऊँगा...' इस प्रकार की जो हल्की, गंदी मान्यतारूपी कपट हृदय में पड़ा है, उसको निकालें।

सत्य समान तप नहीं, झूठ समान नहीं पाप।
जिसके हिरदे सत्य है, उसके हिरदे आप॥

वैर, काम-क्रोध, ईर्ष्या-घृणा-द्वेष आदि गंदगी को अपने हृदयरूपी घर से निकालें।

शांति, क्षमा, सत्संग, जप, तप, धारणा-ध्यान-समाधि आदि सुंदर चीजें अपने चित्त में धारण करें। दिवाली में लोग नयी चीजें लाते हैं न ! कोई चाँदी की पायल लाते हैं तो कोई अँगूठी लाते हैं, कोई कपड़े लाते हैं तो कोई गहने लाते हैं, कोई बर्तन लाते हैं तो कोई नयी गाड़ी लाते हैं। हम भी क्षमा, शांति आदि सद्‌गुण अपने अंदर उभारने का संकल्प करें।

इन दिनों प्रकाश किया जाता है। वर्षा ऋतु के कारण बिनजरूरी जीव-जन्तु बढ़ जाते हैं जो मानव के आहार-व्यवहार और जीवन में विघ्न डालते हैं। वर्षा ऋतु के अंत का भी यही समय है अतः दीये जलते हैं तो कुछ कीटाणु तेल की बू से नष्ट हो जाते हैं और कई कीट-पतंग दीये की लौ में जलकर स्वाहा हो जाते हैं।

दिवाली के दिनों में मधुर भोजन किया जाता है क्योंकि इन दिनों पित्त-प्रकोप बढ़ जाता है। पित्त के शमन के लिए मीठे, गरिष्ठ एवं चिकने पदार्थ हितकर होते हैं।

दिवाली पर्व पर मिठाई खाओ-खिलाओ, किन्तु मिठाई में इतने मशगूल न हो जाओ कि रोग का रूप ले ले। दूध के मावे की मिठाइयाँ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

यह दिवाली तो वर्ष में एक बार ही आती है और हम उत्साह से बहुत सारा परिश्रम करते हैं तब कहीं जाकर थोड़ा-सा सुख देकर चली जाती है किन्तु एक दिवाली ऐसी भी है जिसे एक बार ठीक से मना लिया तो फिर उस दिवाली का आनंद, सुख और प्रकाश कम नहीं होता।

सारे पर्व मनाने का फल यही है कि जीव अपने शिवस्वरूप को पा ले, अपनी आत्म-दिवाली में आ जाये।

जैसे गिल्ली-डंडा खेलनेवाला व्यक्ति गिल्ली को एक डंडा मारता है तो वह थोड़ी ऊपर उठती है। दूसरी बार डंडा मारता है तो गिल्ली गगनगामी हो जाती है। ऐसे ही उत्सव-पर्व मनाकर आप अपनी बुद्धिरूपी गिल्ली को ऊपर उठाओ और उसे ब्रह्मज्ञान का ऐसा डंडा मारो कि वह मोह-माया और काम-क्रोध आदि से पार होकर ब्रह्म-परमात्मा तक पहुँच जाये।

एक साधक ने प्रार्थना करते हुए कहा है :

मैंने जितने दीप जलाये, नियति पवन ने सभी बुझाये।
मेरे तन-मन का श्रम हर ले, ऐसा दीपक तुम्हीं जला दो॥

अपने जीवन में उजाला हो, दूसरों के जीवन में भी उजाला हो, व्यवहार की पवित्रता का उजाला हो, भावों की पवित्रता का उजाला हो, कर्मों की पवित्रता का उजाला हो और स्नेह की, मधुरता की मिठाई हो, राग-द्वेषादि कचरे को हृदयरूपी घर से निकालें एवं उसमें क्षमा, परोपकार आदि सद्‌गुण भरें। यही दिवाली पर्व का उद्देश्य है।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा...

शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से जो कुछ भी करें, उस परमात्मा के प्रसाद को उभारने के लिए करें तो फिर ३६५ दिनों में आनेवाली दिवाली एक ही दिन की दिवाली नहीं रहेगी, आपकी-हमारी दिवाली रोज बनी रहेगी।

*

भाईदूज : भाई-बहन के स्नेह का प्रतीक

[भाईदूज दिनांक : २९ अक्तूबर २०००]

यमराज, यमुना, तापी एवं शनि- ये भगवान सूर्य की संतानें कही जाती हैं। किसी कारण से यमराज अपनी बहन यमुना से वर्षों दूर रहे। एक बार यमराज के मन में हुआ कि :

'मेरी बहन यमुना को देखे हुए बहुत वर्ष हो गये हैं।' अतः उन्होंने अपने दूतों को कहा कि :

''जाओ, जाकर जाँच करो कि यमुना आज कल कहाँ स्थित है।''

यमदूत विचरण करते-करते धरती पर आये तो सही किन्तु उन्हें कहीं यमुनाजी का पता नहीं लगा। फिर यमराज स्वयं विचरण करते हुए मथुरा आये एवं विश्रामघाट पर बने हुए यमुना के महल में पहुँचे।

बहुत वर्षों के बाद अपने भाई को पाकर बहन यमुना ने बड़े प्रेम से यमराज का स्वागत-सत्कार किया एवं यमराज ने भी बहन की सेवा-सुश्रूषा के लिए याचना करते हुए कहा :

''बहन ! तू क्या चाहती है ? मुझे अपनी प्रिय बहन की सेवा का मौका चाहिए।''

दैवी स्वभाववाला एवं परोपकारी आत्मा क्या माँगे ? अपने लिए जो माँगता है, वह तो भोगी होता है, विलासी होता है लेकिन जो औरों के लिए माँगता है अथवा भगवद्‌प्रीति माँगता है वह तो भगवान का भक्त होता है, परोपकारी आत्मा होता है। भगवान सूर्य दिन-रात परोपकार करते हैं तो सूर्यपुत्री यमुना क्या माँगती ?

यमुना ने कहा : ''जो भाई मुझमें स्नान करे वह यमपुरी न जाये।''

यमराज चिंतित हो गये कि : 'इससे तो यमपुरी का ही दिवाला निकल जायेगा। कोई कितने ही पाप करे और यमुना में गोता मारे तो यमपुरी न आये ! सब स्वर्ग के अधिकारी हो जायेंगे तो अव्यवस्था हो जायेगी।'

अपने भाई को चिंतित देखकर यमुना ने कहा :

''भैया ! अगर यह वरदान देना तुम्हारे लिये कठिन है तो आज नववर्ष की द्वितीया है। आज के दिन भाई बहन के यहाँ आये या बहन भाई के यहाँ पहुँचे और जो भाई बहन से स्नेह से मिले ऐसे भाई को यमपुरी के पाश से मुक्त करने का वचन तो तुम दे सकते हो।''

यमराज प्रसन्न हुए और बोले : 'बहन ! ऐसा ही होगा।''

पौराणिक दृष्टि से आज भी लोग बहन यमुना एवं भाई यम के इस शुभ प्रसंग का स्मरण करके आशीर्वाद पाते हैं एवं यम के पाश से छूटने का संकल्प करते हैं।

यह पर्व भाई-बहन के स्नेह का द्योतक है। कोई बहन नहीं चाहती कि उसका भाई दीन-हीन हो, तुच्छ हो, सामान्य जीवन जीनेवाला हो, ज्ञानरहित हो, प्रभावरहित हो। इस दिन भाई को अपने घर पाकर वह अत्यंत प्रसन्न होती है अथवा किसी कारण से भाई नहीं आ पाता तो स्वयं उसके घर

चली जाती है ।

बहन भाई को तिलक करती है इस शुभ भाव से कि : 'मेरा भैया त्रिनेत्र बने ।' इन दो आँखों से जो नाम-रूपवाला जगत दिखता है, वह इन्द्रियों को आकर्षित करता है लेकिन ज्ञाननेत्र से जो जगत दिखता है उससे इस नाम-रूपवाले जगत की पोल खुल जाती है और जगदीश्वर का प्रकाश दिखने लगता है ।

बहन तिलक करके अपने भाई को प्रेम से भोजन करवाती है एवं भाई बदले में बहन को वस्त्र-अलंकार, दक्षिणादि देता है । बहन निश्चिन्त होती है कि : 'मैं अकेली नहीं हूँ... मेरे साथ मेरा भैया है ।'

दिवाली के तीसरे दिन आनेवाला भाईदूज का यह पर्व बहन के संरक्षण की याद दिलानेवाला एवं बहन द्वारा भाई के लिए शुभकामनाएँ करने का पर्व है ।

इस दिन बहन को चाहिए कि वह अपने भाई की दीर्घायु के लिए यमराज से अर्चना करे एवं इन अष्ट चिरंजीवियों के नाम का स्मरण करे : मार्कण्डेय, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा एवं परशुराम । 'मेरा भाई चिरंजीवी हो...' ऐसी उनसे प्रार्थना करे तथा मार्कण्डेयजी से इस प्रकार प्रार्थना करे :

मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पजीवितः ।
चिरंजीवी यथा त्वं तथा मे भ्रातारं कुरुः ॥

'हे महाभाग मार्कण्डेय ! आप सात कल्प के अंत तक जीनेवाले चिरंजीवी हैं । जैसे आप चिरंजीवी हैं वैसे मेरा भाई भी दीर्घायु हो ।'

(पद्मपुराण)

इस प्रकार भाई के लिये मंगल कामना करने का एवं भाई-बहन के पवित्र स्नेह का पर्व है भाईदूज ।

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा । जो सदस्य ९६ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अक्तूबर २००० के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें ।

अपनी संस्कृति का आदर करें...

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

किसी गाँव का एक लड़का पढ़-लिखकर पैसे कमाने के लिये विदेश गया । शुरू में तो कहीं ठिकाना न मिला । धीरे-धीरे पेट्रोल पंप आदि जगहों पर काम करके कुछ धन कमाया एवं भारत आया । अब उसके लिये अपना देश भारत 'भारत' नहीं रहा, 'इण्डिया' हो गया ।

परदेश के वातावरण, बाह्य चकाचौंध एवं इन्द्रियगत ज्ञान से उसकी बुद्धि इतनी आकर्षित हो गयी थी कि वह सामान्य विवेक तक भूल गया था । पहले तो वह रोज माता-पिता को प्रणाम करता था किन्तु आज दो साल के बाद इतनी दूर से आने पर भी उसने पिता को प्रणाम न किया बल्कि बोला :

''ओह पापा ! कैसे हो ?''

पिता की तीक्ष्ण नजरों ने परख लिया कि पुत्र का व्यवहार बदल गया है । दूसरे दिन पिता ने पुत्र से कहा :

''चलो बेटा ! गाँव में जरा चक्कर लगाकर आयें और सब्जी भी ले आयें ।''

पिता-पुत्र दोनों गये । पिता ने सब्जीवाले से २५० ग्राम गिल्की तौलने के लिये कहा ।

पुत्र : ''पापा ! आपके 'इण्डिया' में इतनी छोटी-छोटी गिल्की ? हमारे अमेरिका में तो इससे दुगुनी बड़ी गिल्की होती है ।''

अब 'इण्डिया' उसका अपना न रहा, पिता का हो गया। कैसी समझ ! अपने देश से कोई पढ़ने या पैसा कमाने के लिये परदेश जाये तो ठीक है किन्तु कुछ समय तक वहाँ रहने के बाद वहाँ के बाह्य चकाचौंध से आकर्षित होकर अपने देश का गौरव एवं अपनी संस्कृति भूल जाये, वहाँ की फालतू बातें अपने दिमाग में भर ले और यहाँ आने पर अपने बुद्धिमान् बड़े-बुजुर्गों के साथ ऐसा व्यवहार करे, इससे अधिक दूसरी कौन-सी मूर्खता होगी ?

पिता कुछ न बोले। थोड़ा आगे गये। पिता ने २५० ग्राम भिण्डी तुलवायी। तब पुत्र बोला :

''ह्वाट इज दिस, पापा ?'' इतनी छोटी भिण्डी ! हमारे अमेरिका में तो बहुत बड़ी-बड़ी भिंडी होती है, यहाँ तो बहुत छोटी-छोटी।''

पिता को गुस्सा आया किन्तु वे सत्संगी थे अतः अपने मन को समझाया कि : 'कबसे डींग मार रहा है... मौका देखकर समझाना पड़ेगा।' प्रगट में बोले :

''पुत्र ! वहाँ सब ऐसा खाते होंगे तो उनका शरीर भी ऐसा ही भारी-भरकम होगा और उनकी बुद्धि भी मोटी होगी। भारत में तो हम सात्त्विक आहार लेना पसंद करते हैं अतः हमारे मन-बुद्धि भी सात्त्विक होते हैं।''

चलते-चलते उनकी नजर तरबूज के ढेर पर गई। पुत्र ने कहा : ''पापा ! हम 'वॉटरमेलन' (तरबूज) लेंगे ?''

पिता ने कहा : ''बेटा ! ये नींबू हैं। अभी कच्चे हैं, पकेंगे तब लेंगे।''

पुत्र पिता की बात का अर्थ समझ गया और चुप हो गया।

परदेश का वातावरण ठंडा एवं वहाँ के लोगों का आहार चर्बीयुक्त होने से उनकी त्वचा गोरी एवं शरीर का कद अधिक होता है। भौतिक सुख-सुविधाएँ कितनी भी हों, शरीर चाहे कितना भी हृष्ट-पुष्ट एवं गोरा हो लेकिन उससे आकर्षित नहीं हो जाना चाहिए।

वहाँ की जो अच्छी बातें हैं उनको तो हम नहीं लेते किन्तु वहाँ के हल्के संस्कारों को हमारे युवान तुरंत ग्रहण कर लेते हैं। क्यों ? क्योंकि हमारी संस्कृति के गौरव से वे अपरिचित हैं। हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदत्त ज्ञान की महिमा को उन्होंने अब तक जाना नहीं है, राम-तत्त्व के, कृष्ण-तत्त्व के, चैतन्य-तत्त्व के ज्ञान से वे अनभिज्ञ हैं।

'वाइन' पीनेवाले, अण्डे-मांस-मछली खानेवाले परदेश के विज्ञानियों की पुस्तकें खूब रूपये खर्च करके भारत के युवान पढ़ते हैं किन्तु अपने ऋषि-मुनियों ने वल्कल पहनकर, कंदमूल-फल और पत्ते खाकर, पानी और हवा पर रहकर तपस्या-साधना की, योग की सिद्धियाँ पायीं, आत्मा-परमात्मा का ज्ञान पाया और इसी जीवन में जीवनदाता से मुलाकात हो सके ऐसी युक्तियाँ बतानेवाले शास्त्र रचे, उन शास्त्रों को पढ़ने का समय ही आज के युवानों के पास नहीं है।

उपन्यास, अखबार एवं अन्य पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने का समय मिलता है, मन-मस्तिष्क को विकृत करनेवाले तथा व्यसन, फैशन और विकार उभारनेवाले चलचित्र व चैनलों को देखने का समय मिलता है, फालतू गपशप करने का समय मिलता है, शरीर को बीमार करनेवाले अशुद्ध खान-पान के लिए समय मिलता है, व्यसनों के मोह में पड़कर मृत्यु के कगार पर जा खड़े होने के लिए समय मिलता है लेकिन सत्शास्त्र पढ़ने के लिये, ध्यान-साधना करके तन को तंदुरुस्त, मन को प्रसन्न एवं बुद्धि को बुद्धिदाता में लगाने के लिये उनके पास समय ही नहीं है। खुद की, समाज की, राष्ट्र की उन्नति में सहभागी होने की उनमें रुचि ही नहीं है।

हे भारत के युवानों ! इस विषय में गंभीरता से सोचने का समय आ गया है। तुम इस देश के कर्णधार हो। तुम्हारे संयम, त्याग, सच्चरित्रता, समझ एवं सहिष्णुता पर ही भारत की उन्नति निर्भर है।

वृक्ष-कीट-पशु-पक्षी आदि योनियों में जीवन प्रकृति के नियमानुसार चलता है। उन्हें अपने विकास की स्वतंत्रता नहीं होती लेकिन तुम मनुष्य हो।

मनुष्य-जन्म में कर्म की स्वतंत्रता होती है । मनुष्य अपनी उन्नति के लिये पुरुषार्थ कर सकता है क्योंकि परमात्मा ने उसे समझ दी है, विवेक दिया है ।

अगर तुम चाहो तो सफल उद्योगपति, सफल अभियंता, सफल चिकित्सक, सफल नेता आदि बनकर राष्ट्र के विकास में सहयोगी हो सकते हो, साथ ही किसी ब्रह्मवेत्ता महापुरुष का सत्संग-सान्निध्य एवं मार्गदर्शन पाकर अपने शिवत्व में भी जाग सकते हो । इसीलिये तुम्हें यह मानव-तन मिला है ।

भर्तृहरि ने कहा भी है :

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

'जब तक काया स्वस्थ है और वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों को करने में अशक्त नहीं हुई हैं तथा जब तक आयु नष्ट नहीं हुई है, तब तक विद्वान् पुरुष को अपने श्रेय के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिए । घर में आग लग जाने पर कुआँ खोदने से क्या लाभ ?' (वैराग्यशतक : ७५)

अतः हे महान् देश के वासी ! बुढ़ापा, कमजोरी व लाचारी आ घेरे, उसके पहले अपनी दिव्यता को, अपनी महानता को, महान् पद को पा लो, प्रिय !

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें । इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी । अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें ।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी ।

जीवन में संयम का महत्त्व

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

बुद्ध के मौसेरे भाई आयुष्यमान नंद ने बुद्ध से संन्यास दीक्षा ग्रहण करने के बाद प्रवज्या लेने की ठान ली । जब वह घर छोड़कर जाने लगा तो अपनी पत्नी से कहा : ''मैं अपने भोगी जीवन का त्याग करके, चिंता और द्वेष, मोह और ममता को सदा के लिये छोड़कर प्रवज्या लेने जा रहा हूँ ।'' आयुष्यमान नंद को इस प्रकार वैराग्यवान् देखकर पत्नी ने उसे विदाई देते समय कहा : ''जाते हो तो भले जाओ अपने जीवन का उद्धार करने । प्रवज्या ले लो । कोई बात नहीं । लेकिन कर्मभाव से इस कर्मपतिता को कभी-कभी जरा याद तो कर लेना ।''

पत्नी ने इतना ही कह दिया : 'कर्मपतिता को कभी-कभी जरा याद कर लेना ।' बस, यही शब्द । प्रवज्या लेने के बाद ये शब्द आयुष्यमान नंद के मन में कभी-कभी गूँजते थे । जब तक एक भी बात मन में गूँजती हो तब तक चित्त की विश्रांति का मार्ग नहीं मिल सकता है । अतः आयुष्यमान ने अपनी पत्नी के अंतिम शब्द को भूलने का बहुत प्रयास किया, अनेक उपाय किया, संयम साधा । लेकिन मन कहाँ मानता है ? पत्नी के वही शब्द अभी भी मन में गूँज रहे हैं : 'कर्मपतिता को कभी-कभी जरा याद कर लेना ।'

उसके सारे उपाय व्यर्थ हो गये । अंततः उसने अपने एक गुरुभाई भिक्षुक को कह ही दिया : ''मुझे घर जाना होगा । मैं इस संन्यस्त जीवन का परित्याग कर गृहस्थी जीवन जीऊँगा ।'' उस बुद्धिमान्

गुरुभाई ने, सत्शिष्य ने बुद्ध को कहा : ''आयुष्यमान नंद ऊँचाई का रास्ता छोड़कर पतित प्रवाह की तरफ जा रहा है, सरकनेवाले संसार-सुख की ओर जा रहा है जिसमें उसने हजारों-हजारों जन्मों तक भोग भोगे थे। भन्ते ! उसे बचाने की करुणा हो ।''

करुणावान् हृदय ने स्वीकृति दी। बुद्ध ने आयुष्यमान नंद को बुलाकर पूछा : ''तुम घर जाना चाहते हो ? क्या कारण है ?''

आयुष्यमान नंद : ''प्रवज्या करते समय मेरी पत्नी ने विदाई तो दी लेकिन जाते-जाते उसने कहा कि : 'कर्मपतिता को कभी-कभी जरा याद कर लेना ।' ये करुणापूर्ण शब्द यदा-कदा मेरे कानों में गूँजते रहते हैं। भन्ते ! मुझे उसकी याद आती है। याद उसकी और वेश भिक्षुक का ! मुझे अच्छा नहीं लगता है। घर में रहकर भजन करूँगा।''

बुद्ध ने कहा : ''अगर घर में रहकर कोई भजन करके सफल हो जाता तो कई लोग ऊँचे अनुभव के धनी होते। कोई-कोई अवतारी पुरुष घर में रहते हुए दिखते हैं लेकिन वे घर में नहीं, ईश्वर में होते हैं। ऐसा कोई महापुरुष ही संसार में रहते हुए संसारी वातावरण से अप्रभावित रह सकता है। बाकी साधक को तो साधना के लिये विषय-विकारों में गिरानेवाला वातावरण नहीं बल्कि विषय-विकारों से बचानेवाला साधु-संतों का संग, एकांत एवं ध्यान-भजन का वातावरण ही चाहिए।''

आयुष्यमान नंद ने खुले हृदय से कहा : ''मैं प्रवज्या के नियम नहीं निभा सकता। मुझे उसकी याद आती है।''

''त्यागकर आये विषयभोग, पत्नी और घर, फिर उधर जाते हो ? तुम वमन किया हुआ विषय अब चाटने हेतु जाना चाहते हो ?'' कैसी चोट मार दी !

आयुष्यमान : ''भन्ते ! मैं दगाखोर जीवन जीना नहीं चाहता। उसकी याद आती है।''

बुद्ध : ''ठीक है । आओ, मेरे साथ चलो।''

बुद्ध ले गये आयुष्यमान नंद को एकांत में और उन्होंने उसे ध्यान करने को कहा। ध्यान के दरम्यान बुद्ध ने अपनी योगशक्ति का उपयोग करके तावतिंस लोक में उसकी यात्रा करा दी। तावतिंस लोक में वह क्या देखता है कि वहाँ गजब की सुंदरियाँ हैं। अप्सराओं का सौंदर्य तो वह देखता ही रह गया।

बुद्ध ने पूछा : ''क्या इनका सौंदर्य और तुम्हारी पत्नी का सौंदर्य बराबर का है ?''

आयुष्यमान : ''नहीं नहीं भन्ते ! क्या कहते हैं ? इन अप्सराओं के रूप-लावण्य और सौंदर्य के आगे मेरी पत्नी का चेहरा भी भद्दा लगता है। क्या सौंदर्य का अंबार है ! इनके पैरों के नाखून कितने चमकीले हैं ! इनके पैर देखता हूँ तो इतने सुंदर, सुहावने और आकर्षक हैं कि सौंदर्य के प्रसाधनों का उपयोग करके मेरी पत्नी शादी के दिनों में जो दुलहन बनकर दिखती थी उसका मुखमंडल भी इनके पैरों के आगे कोई मायना नहीं रखता है, अति तुच्छ दिखता है। भन्ते ! यह मैं क्या देख रहा हूँ !''

बुद्ध : ''आयुष्यमान ! मैं तुझे ये अप्सरायें प्राप्त करा सकता हूँ।''

आयुष्यमान : ''भन्ते ! मैं आपकी सभी बातें मानूँगा, सभी शर्तें मानूँगा। बस, मुझे ये मिल जायँ।''

बुद्ध : ''चलो, अब हम अपने लोक में चलते हैं।''

बुद्ध उसे इस भूलोक में ले आये। उन्होंने उसके सामने यह शर्त रखी : 'तू केवल एक वर्ष के लिये ब्रह्मचर्य का पालन कर। तेरे चित्त में जिस किसी भी विषय के प्रति आकर्षण पैदा हो, उसको हटाते जाना और विश्रांति पाते जाना।'

बुद्ध ने कुछ प्रयोग बताये और आयुष्यमान नंद उन प्रयोगों के अनुसार बड़ी ईमानदारी और तत्परता से साधना में लग गया। उसने अपने खान-पान में संयम किया, लोगों से मिलने-जुलने में सावधानी बरती और ब्रह्मचर्य का सख्ती से पालन किया।

ब्रह्मचर्य-पालन से बुद्धि सूक्ष्म और तेजस्वी होती है, प्रज्ञा निखरती है, शरीर में ओज-तेज का विकास होता है। इससे व्यक्तित्व निर्भीक बनता है। ब्रह्मचर्य सारी सफलताओं की महान् कुंजी है। हमारे खान-पान से शरीर में जो सप्तधातुएँ बनती हैं उनमें एक वीर्य धातु है। अगर इसका संयम किया जाय तो यह ओज में परिणत हो जाता है जिसके प्रभाव से एक गुप्त नाड़ी जागृत होती है। इस नाड़ी का आत्म-साक्षात्कार से सीधा संबंध है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने भी यह

बात कही है।

एक उच्च कोटि के संत ने पूछा कि : 'गृहस्थ होते हुए भी आपने इतनी ऊँचाइयों को पाया जबकि अन्य गृहस्थी लोग भी भजन करते हैं किन्तु वे ऐसी ऊँचाई पर नहीं पहुँच पाते, ऐसा क्यों ?'

'गृहस्थी लोग भजन करते हैं तो भजन करने से जो ऊर्जा, तेजोवलय या जो योग्यता बनती है उसे वे विषय-विकारों को भोगने में खत्म कर देते हैं और ठनठनपाल रह जाते हैं। लेकिन मैं शादी-शुदा होते हुए भी शक्ति का ह्रास नहीं होने देता हूँ। मैं गृहस्थ दिखता हूँ, गृहस्थी के व्यवहार करता हूँ लेकिन विकारी जीवन नहीं जीता। मैं बाजार से गुजरता हूँ लेकिन खरीददार बनकर नहीं। रामकृष्ण ठाकुर ऐसे ही थे तभी तो भगवान रामकृष्ण होकर पूजे जा रहे हैं। ऐसा कोई पुरुष विरला ही होता है।'

आयुष्यमान नंद क्या खाना, कब खाना, कितना खाना, कैसे खाना यह सब विवेकपूर्वक विचारकर खाता-पीता। अब वह स्वाद का गुलाम नहीं रहा। पंद्रह दिन में एक बार कड़ा उपवास करता जिससे वीर्य, ओज के रूप में परिणत हो जाय। उसने एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पालन करने का दृढ़ संकल्प लिया था ताकि बाद में पाँच सौ अप्सरायें उसे सदा के लिये भोग में मिलेंगी और ऊँचे लोक में रहने को मिलेगा।

शुरूआत तो हुई थी भोग की लालच से। भोग की लालच से ही सही उसने खूब संयम किया, ब्रह्मचर्य पाला। वर्ष पूरा हुआ तो बुद्ध ने आयुष्यमान नंद से कहा : ''मैं अपना वचन पालने को तैयार हूँ। मैं तुझे उसी लोक में भेज सकता हूँ। मेरे लोकपाल और पाँच सौ अप्सराएँ तेरी चाकरी में रहेंगे। तू तैयार हो जा।''

आयुष्यमान फूट-फूटकर रोया कि : ''भन्ते! भोग में सामर्थ्य का क्षय होता है जबकि योग में सामर्थ्य बढ़ता है। भोग में शांति अशांति के रूप में बदलती है जबकि योग में शांति महाशांति का द्वार खोलती है। अब आप मुझे अपने श्रीचरणों में ही रहने दें। मेरे गृहस्थी के सुख से तो अप्सराओं के संग का सुख बहुत ऊँचा है लेकिन विश्रांति के सुख के आगे वह सुख भी अति तुच्छ है और दुःखों से भरा है। भन्ते! परमात्म-विश्रांति से चित्त शुद्ध होता है, स्वास्थ्य में लाभ होता है, मन में सद्भावना पनपती है, बुद्धि में सात्त्विक सामर्थ्य और हृदय में सच्ची स्वाधीनता का प्रागट्य होता है।''

आयुष्यमान नंद को संयम का महत्त्व समझ में आ चुका था। फिर तो वह दृढ़ता से लग गया बुद्ध के उपदेशों का पालन करने में...

जिसने अपने जीवन में संयम का महत्त्व जान लिया एवं तदनुसार आचरण में लग गया वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अवश्य सफल होता है। संयमित जीवन से समर्थ व्यक्तित्व एवं सुदृढ़ समाज का निर्माण होता है और सुदृढ़ एवं संगठित समाज से शक्तिशाली, स्वावलंबी एवं गौरवशाली राष्ट्र का निर्माण होता है। हमारा प्राचीन भारत समकालीन विश्व में सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र के रूप में उभरा था तो उसके पीछे समाज में संयम, सच्चारित्र्य एवं कर्मनिष्ठा ही कारणभूत थी। अतः आप यदि अपने राष्ट्र की गौरवशाली परंपरा को पुनर्जीवित कर उसे विश्वगुरु के पद पर आसीन होते देखना चाहते हैं तो संयम-सदाचार एवं ब्रह्मचर्य का सावधान होकर पालन करें।

मेरे भारतवासियों! अब उठो! जागो! विलासिता का त्याग करो... विषय-विकार बढ़ाकर जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करनेवाली पाश्चात्य संस्कृति के कुप्रभाव से अपने को बचाओ... संयम का महत्त्व समझो एवं औरों को समझाओ।

आश्रम व समितियों की तरफ से चलाये जा रहे 'युवाधन सुरक्षा अभियान' के तहत आश्रम से प्रकाशित **'यौवन सुरक्षा'** एवं **'योगयात्रा-४'** पुस्तक देश के भावी कर्णधारों तक पहुँचाने के लिए व्यापक स्तर पर सेवाकार्य किये जा रहे हैं। आप भी इस पुण्य कर्म में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान कर शिक्षणशालाओं, घरों एवं विभिन्न संस्थानों में संयम-सदाचार की अमर ज्योत जला दो ताकि वर्त्तमान पीढ़ी तो उससे लाभान्वित हो ही, भावी पीढ़ी भी उसके दिव्य आलोक में अपना पथ प्रशस्त कर सके। एक बार फिर भारत के गौरवमय अतीत को चरितार्थ होने दो... उठो, यही वक्त है!

यह समय नहीं है सोने का, सोकर विषयों में गिरने का।
स्वयं बनो संयमी और बनाओ, जो गाफिल हैं उन्हें जगाओ॥
फैशन चलचित्र विलासिता तजकर, संयम-सदाचार अपनाकर।
संतों के 'युवाधन' संदेश को, सारे जग में तुम फैलाओ॥

एकादशी माहात्म्य

[पापांकुशा एकादशी : ९ अक्तूबर २०००]

युधिष्ठिर ने पूछा : ''मधुसूदन ! अब आप कृपा करके यह बताइये कि आश्विन के शुक्ल पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है और उसका माहात्म्य क्या है ?''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''राजन् ! आश्विन के शुक्ल पक्ष में जो एकादशी होती है, वह 'पापांकुशा' के नाम से विख्यात है। वह सब पापों को हरनेवाली, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली, शरीर को नीरोग बनानेवाली तथा सुन्दर स्त्री, धन एवं मित्र देनेवाली है। यदि अन्य कार्य के प्रसंग से भी मनुष्य इस एकमात्र एकादशी को उपवास कर ले तो उसे कभी यमयातना नहीं प्राप्त होती।

राजन् ! एकादशी के दिन उपवास और रात्रि में जागरण करनेवाले मनुष्य अनायास ही दिव्यरूपधारी, चतुर्भुज, गरुड़ की ध्वजा से युक्त, हार से सुशोभित और पीताम्बरधारी होकर भगवान विष्णु के धाम को जाते हैं। राजेन्द्र ! ऐसे पुरुष मातृपक्ष की दस, पितृपक्ष की दस तथा पत्नी के पक्ष की भी दस पीढ़ियों का उद्धार कर देते हैं। उस दिन सम्पूर्ण मनोरथ की प्राप्ति के लिये मुझ वासुदेव का पूजन करना चाहिए। जितेन्द्रिय मुनि चिरकाल तक कठोर तपस्या करके जिस फल को प्राप्त करता है, वह फल उस दिन भगवान गरुड़ध्वज को प्रणाम करने से ही मिल जाता है।

जो पुरुष सुवर्ण, तिल, भूमि, गौ, अन्न, जल, जूते और छाते का दान करता है, वह कभी यमराज को नहीं देखता। नृपश्रेष्ठ ! दरिद्र पुरुष को भी चाहिए कि वह स्नान, जप-ध्यान आदि करने के बाद यथाशक्ति होम, यज्ञ एवं दान वगैरह करके अपने प्रत्येक दिन को सफल बनाए।

जो होम, स्नान, जप, ध्यान और यज्ञ आदि पुण्यकर्म करनेवाले हैं, उन्हें भयंकर यमयातना नहीं देखनी पड़ती। लोक में जो मानव दीर्घायु, धनाढ्य, कुलीन और नीरोग देखे जाते हैं, वे पहले के पुण्यात्मा हैं। पुण्यकर्त्ता पुरुष ऐसे ही देखे जाते हैं। इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ, मनुष्य पाप से दुर्गति में पड़ते हैं और धर्म से स्वर्ग में जाते हैं।

राजन् ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था, उसके अनुसार पापांकुशा एकादशी का माहात्म्य मैंने वर्णन किया। अब और क्या सुनना चाहते हो ?''

*

आँवला

आयुर्वेद के मतानुसार, आँवले थोड़े खट्टे, कसैले, मीठे, ठंडे, हल्के, त्रिदोष (वात-पित्त-कफ) का नाश करनेवाले, रक्तशुद्धि करनेवाले, रुचिकर, मूत्रल, पौष्टिक, वीर्यवर्धक, केशवर्धक, टूटी अस्थि जोड़ने में सहायक, कांतिवर्धक, नेत्रज्योतिवर्धक, गर्मीनाशक एवं दाँतों को मजबूती प्रदान करनेवाले होते हैं।

आँवले वातरक्त, रक्तप्रदर, बवासीर, दाह, अजीर्ण, श्वास, खांसी, दस्त, पीलिया एवं क्षय जैसे रोगों में लाभप्रद होते हैं। आँवले के सेवन से आयु, स्मृति, कांति एवं बल बढ़ता है, हृदय एवं मस्तिष्क को शक्ति मिलती है, आँखों का तेज बढ़ता है और बालों की जड़ मजबूत होकर बाल काले होते हैं।

❊ औषधि-प्रयोग ❊

१. श्वेत प्रदर : ३ से ५ ग्राम चूर्ण को मिश्री तथा दूध की मलाई के साथ प्रतिदिन दो बार लेने से अथवा इस चूर्ण को शहद के साथ चाटने से श्वेत प्रदर ठीक होता है।

२. सिरदर्द : आँवले के ३ से ५ ग्राम चूर्ण को घी एवं मिश्री के साथ लेने से पित्त तथा वायुदोष से उत्पन्न सिरदर्द में राहत मिलती है।

३. प्रमेह (धातुक्षय) : आँवले के रस में ताजी हल्दी का रस अथवा हल्दी का पावडर व शहद मिलाकर सुबह-शाम पियें अथवा आँवले एवं हल्दी का चूर्ण रोज सुबह-शाम शहद अथवा पानी के साथ लें। इससे प्रमेह मिटता है। पेशाब के साथ धातु जाना बंद होता है।

४. वीर्यवृद्धि के लिये : आँवले के रस में घी तथा मिश्री मिलाकर रोज पीने से वीर्यवृद्धि होती है।

५. कब्जियत : गर्मी के कारण हुई कब्जियत में आँवले का चूर्ण घी एवं मिश्री के साथ चाटें अथवा त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला) चूर्ण आधे से एक चम्मच रोज रात्रि को पानी के साथ लें। इससे कब्जियत दूर होती है।

६. अत्यधिक पसीना आने पर : हाथ-पैर में अत्यधिक पसीना आता हो तो प्रतिदिन आँवले के २० से ३० मि.ली. रस में मिश्री डालकर पियें अथवा त्रिफला चूर्ण लें। आहार में गर्म वस्तुओं का सेवन न करें।

७. दाँत की मजबूती : आँवले के चूर्ण को पानी में उबालकर उस पानी से कुल्ले करने से दाँत मजबूत एवं स्वच्छ होते हैं।

आँवला एक उत्तम औषधि है। जब ताजे आँवले मिलते हों, तब इनका सेवन सबके लिए लाभप्रद है। ताजे आँवले का सेवन हमें कई रोगों से बचाता है। आँवले का चूर्ण, मुरब्बा तथा च्यवनप्राश वर्ष भर उपयोग किया जा सकता है।

[साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।]

नोट : आँवले वीर्यवान् हों तभी खरीदने चाहिए व च्यवनप्राश बनाना चाहिए। चौंतीस औषधियों में उबालकर, बाईस पौष्टिक चीजें डालकर बनाया हुआ च्यवनप्राश अद्भुत रसायन बन जाता है। कम्पनियाँ ये सब नहीं कर पातीं। दिल्ली, सूरत, अमदावाद की समितियाँ यह सेवाकार्य वैद्यों की देख-रेख में कर रही हैं। साधक परिवार को शुद्ध, वीर्यवान् और बलकारी च्यवनप्राश मिले यह प्रयास भी जारी है। - *संपादक*

गोघृत

गोघृत सब स्नेहों में सबसे उत्तम माना जाता है। गाय का घी स्निग्ध, गुरु, शीत गुणों से युक्त होता है तथा यह संस्कारों से अन्य औषध द्रव्यों के गुणों का अनुवर्तन करता है। स्निग्ध होने के कारण वात को शांत करता है, शीतवीर्य होने से पित्त को नष्ट करता है और अपने समान गुणवाले कफदोष को कफघ्न औषधियों के संस्कार द्वारा नष्ट करता है। गोघृत रसधातु, शुक्रधातु और ओज के लिए हितकारी होता है। यह दाह को शांत करता है, शरीर को कोमल करता है और स्वर एवं वर्ण को प्रसन्न करता है। गोघृत से स्मरणशक्ति और धारणाशक्ति बढ़ती है, इन्द्रियाँ बलवान् होती हैं तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

शरद ऋतु में स्वस्थ मनुष्य को घृत का सेवन करना चाहिए क्योंकि इस ऋतु में स्वाभाविक रूप से पित्त का प्रकोप होता है। **'पित्तघ्नं घृतम्'** के अनुसार गोघृत पित्त और पित्तजन्य विकारों को दूर करने के लिए श्रेष्ठ माना

गया है। समग्र भारत की दृष्टि से १६ सितम्बर से १४ नवम्बर तक शरद ऋतु मानी जा सकती है।

पित्तजन्य विकारों के लिए शरद ऋतु में घृत का सेवन सुबह या दोपहर में करना चाहिए। घृत पीने के बाद गरम जल पीना चाहिए। गरम जल के कारण घृत सारे स्त्रोतों में फैलकर अपना कार्य करने में समर्थ होता है।

अनेक रोगों में गाय का घी अन्य औषध द्रव्यों के साथ मिलाकर दिया जाता है। घी के द्वारा औषध का गुण शरीर में शीघ्र ही प्रसारित होता है एवं औषध के गुणों का विशेष रूप से विकास होता है। अनेक रोगों में औषधद्रव्यों से सिद्ध घृत का उपयोग भी किया जाता है जैसे, त्रिफला घृत, अश्वगंधा घृत आदि।

गाय का घी अन्य औषधद्रव्यों से संस्कारित कराने की विधि इस प्रकार है :

औषधद्रव्य का स्वरस अथवा कल्क ५० ग्राम लें। उसमें गाय का घी २०० ग्राम और पानी ८०० ग्राम डालकर उसे धीमी आँच पर उबलने दें। जब सारा पानी जल जाय और घी कल्क से अलग एवं स्वच्छ दिखने लगे तब घी को उतारकर छान लें और उसे एक बोतल में भरकर रख लें।

सावधानी : शहद और गाय के घी का समान मात्रा में सेवन विषतुल्य होता है। अतः इनका प्रयोग विषम मात्रा में ही करना चाहिए।

अत्यंत शीत काल में या कफप्रधान प्रकृति के मनुष्यों द्वारा घृत का सेवन रात्रि में किया गया तो यह आफरा, अरुचि, उदरशूल और पाण्डु रोग को उत्पन्न करता है। अतः ऐसी स्थिति में दिन में ही घृतपान करना चाहिए। जिन लोगों के शरीर में कफ और मेद बढ़ा हो, जो नित्य मंदाग्नि से पीड़ित हों, अन्न में अरुचि हो, सर्दी, उदररोग, आमदोष से पीड़ित हों ऐसे व्यक्तियों को उन दिनों में घृत का सेवन नहीं करना चाहिए।

* औषधि-प्रयोग *

१. गर्भपात : सगर्भावस्था में अशोक चूर्ण को घी के साथ लेने पर गर्भपात से रक्षा होती है।

२. वीर्यदोष : अश्वगंधा चूर्ण घी और मिश्री में मिलाकर देने से अथवा आँवले का रस घी के साथ देने से वीर्य की वृद्धि तथा शुद्धि होती है। शुक्रनाश में इलायची और हींग २०० से ३०० मि.ग्रा. घी के साथ देने से लाभ होता है।

[धन्वन्तरि आरोग्य केन्द्र, साबरमती, अमदावाद।]

गुरुदेव की कृपा से राष्ट्र-स्तर की फायरिंग प्रतियोगिता में प्रथम

मैं बिहार की ओर से सर्वश्रेष्ठ कैडेट बनकर सन् २००० के गणतंत्र दिवस शिविर में भाग लेने हेतु दिल्ली कैम्प गयी थी। मैंने ५ दिसंबर '९९ को जमशेदपुर में गुरुदेव से सारस्वत्य मंत्र ले रखा था। सर्वश्रेष्ठ कैडेट के चुनाव हेतु आयोजित प्रतियोगिता में मेरे सारे टेस्ट अच्छे गये थे। अब सब कुछ 'फायरिंग प्रतियोगिता' पर निर्भर था। मेरा प्रदर्शन सदा टेस्ट के अंतिम दिन ही खराब होता था, अतः मैं बहुत डरी हुई थी। १३ जनवरी २००० को मेरी फायरिंग प्रतियोगिता थी। जब मेरी बारी आई तो मैंने सद्गुरुदेव को स्मरण कर 'पोजीशन' ली, तब मुझे ऐसा लगा कि गुरुदेव मेरे पीछे खड़े हैं और कह रहे हैं : 'तू कर... तू सफल होगी... तू कर तो...' मैंने गुरुजी की बातों को ध्यान में रखकर पाँचों गोलियाँ फायर कर दी। जब मैंने अपना 'टारगेट' देखा तो गुरुदेव को धन्यवाद देने लगी। उन्हीं की कृपा से मैं राष्ट्र-स्तर की फायरिंग प्रतियोगिता में प्रथम व 'बेस्ट कैडेट प्रतियोगिता' में तृतीय आ सकी। सच, परम पूज्य गुरुदेव अपने भक्तों पर सदा कृपा करते हैं।

पूज्यश्री के चरणों में शत-शत बार नमन !

- श्वेता तिवारी

'एन' रोड, क्वार्टर नं. २४/एच २, बिस्टुपुर, जमशेदपुर (बिहार).

*

"इनसे बापू ही बचाएँ..."

पूज्य संत श्री आसारामजी बापू को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम !

हम लोग 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सदस्य हैं। उसमें प्रकाशित सभी बातें बहुत ही सुन्दर एवं अमृत के समान मीठी लगती हैं किन्तु ईसाई लोग हर एक हिन्दू के घर जाकर उसे धर्मभ्रष्ट करने की कूटनीति अपना रहे हैं।

वे लोग हमारे घर भी आये थे तब हमने उनको बताया कि हम तो बापूजी को गुरु मानते हैं एवं सब धर्मों का सार 'श्रीमद्भगवद्गीता' में ही है। ...तो आपके बारे में वे अपमानजनक शब्द बोलने लगे। 'श्रीमद्भगवद्गीता' के बारे में भी वे कुछ-का-कुछ बकने लगे। वे कहने लगे कि : 'हमने खोजबीन की है, यीशु ही सर्वश्रेष्ठ भगवान हैं और बाइबिल ही सबसे श्रेष्ठ ग्रंथ है।'

हमारे हिन्दू लोगों को धर्म के मार्ग से च्युत करके वे बुरा कर्म कर रहे हैं। हम लोगों को उनसे बहुत डर लग रहा था।

वे मीठी भाषा बोलकर अपनी किताबें बेचते हैं और लोग भी उनकी मीठी बातों का शिकार हो जाते हैं। कृपया आप ही इस संकट से हिन्दू समाज को बचा सकते हैं। कृपा करके इस बारे में आप कुछ करेंगे ऐसी हमें आशा है।

- बी.एस.घुले

ए/१२ साँईबाबा हाउसिंग सोसायटी,

नारी सेवा सदन रोड, असल्फा विलेज, घाटकोपर (मुंबई).

*

संस्था समाचार

झाड़ोल (उदयपुर-राज.) : दि. १ से ३ सितम्बर। उदयपुर से करीब ४५ कि. मी. दूर स्थित आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र झाड़ोल जो अरावली की पर्वतीय शृंखला में कई किलोमीटरों में फैला हुआ है, समय-समय पर ईसाइयों के धर्मांतरण के षड्यंत्र का शिकार होता रहता था। समाचार पत्रों में इसके समाचार प्रकाशित होते रहते थे। ऐसे क्षेत्र में पू. बापू के आगमन के लिये सनातन संस्कृति में निष्ठा रखनेवाले भक्त-सज्जनों का हृदय काफी समय से तड़प रहा था।

सनातन दैवी संस्कृति के उन्नायक पू. बापू ने भारतीय आदिवासियों के कल्याण की भावना से वहाँ के लिए तीन दिन का समय प्रदान किया। आदिवासियों में धन एवं वस्तुओं के अभाव की पूर्ति के लिये अमदावाद से कपड़े, बर्तन एवं धन आया तो उनमें ज्ञान के अभाव की पूर्ति के लिये बाड़मेर से पूज्य नारायण साँईं को भी बुलवाया गया। कुशल वैद्यों ने भी मरीजों का नाड़ी-परीक्षण कर उन्हें निःशुल्क औषधियाँ देकर सेवालाभ पाया। २५-३० किलोमीटर पैदल चल-चलकर आनेवाले हजारों आदिवासी लोगों की कतारें अनवरत चलती रहीं कार्यक्रम-स्थल तक।

जिन्हें लोभ-लालच-प्रलोभन आदि देकर जबरदस्ती ईसाई बनाया गया था वे स्वेच्छा से सनातन संस्कृति में दीक्षित हुए। हजारों ने मंत्रदीक्षा ली, दिशा पाई। कइयों ने शराब छोड़ा तो कइयों ने गुटखा, बीड़ी, सिगरेट छोड़ा। सज्जन लोग प्रमुदित हुए, भक्त लोग हर्षित हुए और वयोवृद्धगण कहने लगे : 'पिछले पचास वर्षों में भी ऐसा कार्यक्रम नहीं हुआ।' पूरे क्षेत्र में आध्यात्मिक क्रांति फैल गई। श्री योग वेदान्त सेवा समिति, झाड़ोल ने स्थायीरूप से 'सत्संग-साधना केन्द्र' की शरूआत भी कर दी है। अत्यंत गरीब लोगों को मासिक तौर पर अन्न एवं औषधियाँ आदि मिलें ऐसी व्यवस्था भी अमदावाद आश्रम से होगी। पूज्य बापू ने ऐसा आदेश किया है।

सलुम्बर (उदयपुर-राज.) : दि. ७ से ९ सितम्बर। झाड़ोल कार्यक्रम खत्म होने को था कि पू. बापू का शरीर अस्वस्थ हो गया। मलेरिया बुखार, टॉयफॉयड व पीलिया तीनों मेहमान एक साथ पधारे। फिर भी शरीर की परवाह न करते

हुए बापूजी सलुम्बर के कार्यक्रम में पधारे । वहाँ भी आदिवासियों के लिए भण्डारा हुआ। 'नर सेवा नारायण सेवा' यह मंत्र अपनाते हुए समर्पित साधक जुट गये निःस्वार्थ, निष्काम सेवा में। **'जो भी आये प्रसाद पाए, खाली कोई न जाये।'** विद्यार्थियों के लिए विशेष कार्यक्रम भी संपन्न हुआ।

'आत्मवत् पश्येत् सर्वभूतेषु' का मंत्र जिनके रोम-रोम में रमा है, ऐसे संत सलुम्बरवासियों के पास भागे-भागे पहुँचे। मंच पर मुस्कुराये, हँसे और नाचे भी। 'दुःख पचाने और सुख बाँटने की चीज है' यह वचन सत्संग में सुनाते तो हैं, पर यहाँ उसे करके दिखाया भी है। किसीको पता न चल पाया कि शरीर अस्वस्थ है, कमजोरी है और तीन मेहमान आये हुए हैं शरीर में।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

रतलाम (म. प्र.) : यहाँ दिनांक : १३ से १७ सितम्बर तक सत्संग-कार्यक्रम रखा गया था। किन्तु पूज्य बापू का स्वास्थ्य अभी भी ठीक नहीं था। एलोपैथ के डॉक्टरों ने कहा : ''खायें-पियें और विश्राम करें। कार्यक्रम निरस्त कर दें।'' जबकि आयुर्वेद के जानकार वैद्य ने कहा : ''शारीरिक लक्षण बताते हैं कि रतलाम का कार्यक्रम कर सकते हैं लेकिन तीन दिन तक संपूर्ण उपवास करेंगे और यह औषधि लेंगे। कार्यक्रम निरस्त करने की जरूरत नहीं है।'' वैद्य की सलाह मान लेने पर कार्यक्रम निरस्त होते-होते रह गया और पूर्णिमा के दिन बापूजी बड़ी धूमधाम से मंच पर पधारे। सत्संग के अभाव में वहाँ अशांति, दुःख, कष्ट एवं परस्पर अविश्वास बढ़ता जा रहा था। इस कारण वहाँ सत्संग की बहुत आवश्यकता थी। रतलामवाले ढाई वर्षों से इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए तपस्या कर रहे थे जो फलीभूत हुई।

कोटा (राज.) : दिनांक : २१ से २४ सितम्बर। पूज्य बापू दिनांक : १९ सितम्बर को रेलमार्ग से पहुँचे कोटा जहाँ स्टेशन पर आपका भव्य स्वागत हुआ। रेलवे के प्रमुख अधिकारियों ने अगवानी की। पूज्य बापू वहाँ से करीब २० कि. मी. दूर झालावाड़ रोड पर स्थित लखावा गाँव के पास निर्माणाधीन आश्रम पहुँचे।

एक सुदृढ़, सुसंपन्न एवं अहिंसावादी तथा आशावादी भारत के निर्माण एवं युवाओं के उत्कर्ष के लिये जो समितियाँ या भाई **'यौवन सुरक्षा'** व **'नशे से सावधान'** इन दो पुस्तकों का प्रचार-प्रसार करना चाहें उनको रियायती मूल्य पर ये पुस्तकें मिलें इस उद्देश्य से पू. बापू ने **'माँ महँगीबा समाज उत्थान कोष'** से २५ लाख रूपये इस कार्य में लगाने की घोषणा की।

आखिरी दिन महाकुंभ का-सा दृश्य था। हजारों भाई-बहन एवं विद्यार्थी पूज्य बापू से दीक्षित हुए। पाँच हजार साधकों ने साधना की दीक्षा ली और तीन हजार विद्यार्थी भाई-बहनों ने सारस्वत्य मंत्र की दीक्षा ली।

लक्ष्मी-प्राप्ति साधना

दीपावली पर लोग लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार की साधनाएँ करते हैं। हम यहाँ अपने पाठकों को लक्ष्मी-प्राप्ति की साधना का एक अत्यन्त सरल व मात्र त्रिदिवसीय उपाय बता रहे हैं :

दीपावली के दिन से तीन दिन तक अर्थात् भाईदूज तक एक स्वच्छ कमरे में धूप, दीप व अगरबत्ती जलाकर शरीर पर पीले वस्त्र धारण करके, ललाट पर केसर का तिलक कर, स्फटिक मोतियों से बनी माला द्वारा नित्य प्रातःकाल निम्न मंत्र की दो-दो माला जप करें :

ॐ नमः भाग्यलक्ष्मी च विद्महे।
अष्टलक्ष्मी च धीमहि। तन्नोलक्ष्मी प्रचोदयात्।

लक्ष्मी, गुरुदेव अथवा इष्ट के चित्र पर एक मिनट तक त्राटक करके जप करने से विशेष लाभ होगा।

दीपावली लक्ष्मीजी का जन्मदिवस है। समुद्रमंथन के दौरान वे इस दिन क्षीरसागर से प्रकट हुई थीं। अतः घर में लक्ष्मी के वास और दरिद्रता के विनाश एवं आजीविका के उचित निर्वाह हेतु यह साधना करनेवाले पर लक्ष्मीजी प्रसन्न होती हैं।

पूज्य बापू के सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
१३ से १५ अक्तूबर	जयपुर	सत्संग कार्यक्रम एवं पूर्णिमा दर्शन	सुबह ९-३० शाम ३-३०	भवानी निकेतन स्कूल मैदान, सीकर रोड, जयपुर।	(०१४१) ३६१६०९, ४३३४३८-९.
१४ अक्तूबर	जयपुर	युवावर्ग एवं विद्यार्थियों के लिये विशेष सत्संग			

शरदपूर्णिमा दर्शन : १३ अक्तूबर २००० जयपुर में।

सूचना : पूनमव्रतधारियों को रेलवे स्टेशन से छः कि.मी. दूर स्थित कार्यक्रम-स्थल तक लाने-ले जाने के लिये बस की व्यवस्था की गई है।

कोटा (राज.)में हजारों विद्यार्थी भाई-बहनों ने भारतीय संस्कृति की महानता जानी, जीवन को महान् बनाने का संकल्प किया एवं व्यसनमुक्ति का व्रत लिया। हजारों ने दीक्षा ली।

कोटा (राज.)में सत्संग समापन अवसर पर महाकुंभ, आसपास के कई किलोमीटर से हजारों श्रद्धालु उमड़े। सजल नेत्र, भावपूर्ण हृदय से आरती कर के दी पूज्य बापूजी को विदाई।